मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

एक ऐतिहासिक वास्तविकता

''इस देश में मुसलमानों के शासन व सभ्यता का एक दौर गुज़र चुका है जो छः सात सौ बरस की लम्बी मुद्दत है। यह भारतीय सभ्यता व संस्कृति का एक शानदार दौर है जिसको भारतीय इतिहास से हटाना इस देश के साथ बहुत बड़ा अन्याय व देश से दुश्मनी है। उस दौर में देश की उन्नति व ख़ुशहाली के लिये बहुत से ऐसे काम हुए जिनसे हमारा देश अभी तक फ़ायदा उठा रहा है और सदियों तक फ़ायदा उठाएगा। उस ज़माने के बहुत से चीज़ें जो हमारे देश की ख़ूबसूरती व प्रसिद्धि का कारण हैं। उस दौर में ऐसी हस्तियां पैदा हुईं जिस पर सारी दुनिया के सामने इस देश को गौरवान्वित होने का अधिकार है और जिनसे सारी दुनिया में इस देश की महानता क़ायम है।''

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

JAN 18

₹ 10/-

हमारी मुश्किलें और उनका हल

आज मुसलमान मायूस और बेचैन हैं। मैं कहूंगा कि यह जो घटित हो रहा है वह इस्लाम के खिलाफ़ नहीं है। हमेशा ऐसे अत्याचार इस्लाम पर होते रहे हैं। जनाब रसूलुल्लाह (स०अ०) और सहाबा किराम पर बराबर ऐसे पहाड़ तोड़े गये। इस्लाम का इतिहास उठाकर देख लीजिये। मक्का मुअज़्ज़मा के मुशरिक, मदीना मुनव्वरा के मुनाफ़िक़ीन व यहूद, दूसरे देशों की ग़ैर मुस्लिम क़ौमें, हमेशा इसी क़िस्म के काम करती रही, जिनकी बनिस्बत पहले ही से इशारा नहीं बल्कि साफ़ कर दिया गया था: ''तुम ज़रूर से ज़रूर आइन्दा को अपने मालों और जानों में आज़माए जाओगे।'' और इसी क़िस्म की दूसरी आयतें क़ुरआन मजीद में मौजूद हैं। खुलासा–ए–कलाम यह है कि जो–जो ज़ुल्म आज लोग इस्लाम पर ढा रहे हैं, वह हर ज़माने में ख़ुदा के सच्चे और हक़्क़ानी बन्दों के साथ किये गये हैं।

जनाब रसूलुल्लाह (स०अ०) फ़रमाते हैं कि:

(जिस क़द्र मुझको तकलीफ़ें पहुंचायी गयीं, किसी नबी को नहीं पहुंचायी गयीं) बावजूद उन कामों के वे हमेशा ग़ालिब होकर रहे।

आज हमको भी वही तरीक़ा अपनाना ज़रूरी है जो जनाबे रसूलुल्लाह (स०अ०) ने अख़्तियार किया और यही कामयाबी के तरीक़े हैं अत: निम्नलिखित उपायों पर बहुत जल्द अमल होना ज़रूरी है।

- नमाज़ और जमाअत की पूरी पाबन्दी।
- हर मुहल्ले और हर बस्ती में कोशिश की जाए कि कोई शख़्स बेनमाज़ी न रहे।
- शरीअत पर पूरी तरह से पाबन्दी।
- तालीम को जिसमें मज़हबी ज़रूरतें और बुनियादी चीज़ें हों मज़बूत इरादे के साथ फैलाया जाये और ज़्यादा से ज़्यादा मदरसे व मकतबे क़ायम किये जायें।
- शादी–ब्याह की फ़िज़ूल खर्चियां फ़ौरन बन्द कर दी जाएं।
- ग़मी के लिये क़वानीन बनाये जाएं ताकि उनमें क़र्ज़दारी की नौबत न आये।
- मुक़द्दमे बाज़ी बन्द कर दी जाये।
- लड़कों और लड़कियों के जवान होते ही ब्याह कर दिये जाएं।
- बेवा औरतों को संभव हद तक बिना शादी न छोड़ा जाये।
- बचपन की शादी समाप्त कर दी जाये।
- हर तरह की तिजारत के शोबों में मुसलमान मुकम्मल हिस्सा लें।
- ब्याज पर क़र्ज़ बन्द कर दिया जाये।
- मुसलमानों में आपसी इख़्तिलाफ़ दूर कर दिये जायें।
- हर जगह वालिन्टियर कोरें बनायी जायें।

शेख़ुल इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद हुसैन अहमद मदनी (रह०)

بسم الله الرحمن الرحيم

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक: १ — जनवरी २०१८ ई० — वर्ष: १०

संरक्षक
हज़रत मौलाना
सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी
(अध्यक्ष - दारे अरफ़ात)

निरीक्षक
मौ० वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
जनरल सेकेरेट्री- दारे अरफ़ात

सम्पादक
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नाख़ुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

सह सम्पादक
मो० नफ़ीस ख़ाँ नदवी

अनुवादक
मोहम्मद सैफ़

मुद्रक
मो० हसन नदवी

इस अंक में:

पड़े सोते हैं बेख़बर अहले कश्ती....................................२
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुसलमानों की समस्याएं – संभावनाएं एवं उनका हल.......३
हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

एकेश्वरवाद क्या है?..७
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मदीना के यहूदी...९
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

मरीज़ की नमाज़..१२
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

फिर यह हंगामा ऐ ख़ुदा क्या है?...............................१४
जनाब डॉक्टर जावेद हुसैन

अनिवार्य बनाम स्वैच्छिक देशभक्ति..............................१८
जनाब रामचन्द्र गुहा

इख़्लास का जज़्बा..१९
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूनी नदवी

वर्तमान परिस्थितियां और मुसलमान..............................२०
मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी०.229001
मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला ख़ाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।
प्रति अंक 10रू — वार्षिक 100रू०

सम्पादकीय

पड़े सोते हैं बेख़बर अहले कश्ती

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

इस वक़्त पूरी दुनिया में मुसलमान जिन ख़तरों का सामना कर रहे हैं उसका एहसास लगभग–लगभग सभी को है। पूरी इस्लामी दुनिया बारूद के ढ़ेर पर बैठी है। हिन्दुस्तान में मुसलमानों ने आज़ादी के बाद से कभी भी अपने आप को इतना असुरक्षित नहीं समझा जितना आज समझ रहे हैं। ख़तरे की घन्टियां चारों तरफ़ बज रही हैं। लेकिन जो चीज़ उससे ज्यादा ख़तरनाक है वह यह कि इन तमाम हालात के बावजूद हमारी हालत तक़रीबन वही है जो हाली ने आज से बहुत पहले कही थी.................

पड़े सोते हैं बेख़बर अहले कश्ती।

ख़तरे की घन्टियां इतनी ज़ोर से बज रहीं है कि बहरे भी जाग जाएं, लेकिन हम मुसलमानों का हाल यह है कि हम जाग कर भी सिर्फ़ आंखे मलने में लगे हैं। यह ख़्याल किसी को भी नहीं कि अब हमें आगे क्या करना है। यह ख़तरे क्यों पैदा हुए। हमने क्या–क्या कोताहियां की। कहां–कहां से पानी मर रहा है। इसका जायज़ा लेकर आगे बढ़ने के ख़्वाब अगर हैं भी तो सिर्फ़ आंखों में सजे हुए हैं। इसके लिये न वह ईमान का जोश है, न वह कार्यक्षमता हैं और न आगे बढ़ने की वह तैयारी है जो नज़र आनी चाहिये।

इस्लामी दुनिया का इतिहास बताता है कि ख़तरे इससे बढ़कर भी सामने आ चुके हें। अलग–अलग ज़माने में मुसलमानों ने उनका सामना किया है। कभी–कभी तो लगता था कि यह सूरज डूब न जाये। लेनिक वह ईमान वाले थे और उनका हाल यह था कि:

जहां में अहले ईमां सूरते ख़ुर्शीद जीते हैं। इधर डूबे उधर निकले उधर डूबे इधर निकले।।

मंगोलों ने जब हमला किया तो लगता था कि मुसलमानों का चिराग़ गुल ही हो जायेगा। लेनिक यह ईमान वालों के ईमान की ताक़त और दावत का जज़्बा था कि अल्लाह ने इन्हीं को खड़ा कर दिया। एक अल्लाह के ईमान वाले बन्दे की ईमानी ताक़त को देखकर और उसके दावत के जज़्बे से प्रभावित होकर पूरी एक मंगोल टुकड़ी ईमान ले आयी।

पासबां मिल गये काबे को सनमख़ाने से।

आज जो हालात हैं उनसे सख़्त हालात पहले गुज़र चुके हैं। समस्या स्थिति की गंभीरता का नहीं। समस्या हमारी ग़फ़लत की है। ख़तरा ग़ैरों से नहीं, ख़तरा हमें ख़ुद अपनी ज़ात से है और यह ख़तरा हर ख़तरे पर भारी है। इसको दूर करने की कोशिश अगर न की गयी, ख़ुद अपनी ईमानी ग़ैरत को न ललकारा गया, दिलों में अगर ख़ुद्दारी और ज़िम्मेदारी का एहसास पैदा न किया गया तो फिर ख़ुदा ही हाफ़िज़ है।

कम से कम इस मुल्क की हद तक हमारे उलमा और दानिशवरों (बुद्धिजीवियों) की बड़ी ज़िम्मेदारी है कि वे लोगों को ख़तरों से आगाह करें। उसका मुक़ाबला करने का हौसला पैदा करें। ईमान को जगाने की कोशिश करें। सीने में दबी हुई चिंगारी को आग दें। इसके लिये बड़ी कुर्बानी की भी ज़रूरत है और बड़े हौसला और दर्दमंदी की भी। हर तरह के झगड़ों को भुलाकर अल्लाह के लिये, अल्लाह के दीन के लिये, नबी करीम (स0अ0) की शरीअत के लिये सीना तान कर खड़े हो जायें।

गांव–गांव दौरे किये जायें। दीनी मकतबे क़ायम किये जायें। शहरों में इस्लामिक स्कालर्स का जाल बिछाया जाये। लोगों में ईमान के प्रति जागरुकता पैदा की जाये और ग़ैरों के बीच जाया जाये और उनके बीच काम किया जाये। मानवता की सेवा के ज़रिये उनकी ग़लतफ़हमियों को दूर किया जाये और इस्लाम की वास्तविकता से उनको परिचित कराया जाये। यही इस वक़्त हमारी बचाव व सुरक्षा का रास्ता है। ख़तरे कैसे भी हों, अगर हमने यह सब कर लिया तो ईमान की ताक़त के आगे सारी ताक़ते पानी हैं।

मुसलमानों की समस्याएं
संभावनाएं एवं उनका हल

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

दावत का काम मुसलमानों का सबसे ख़ास काम क़रार दिया गया है और उसको इस्लामी ज़िन्दगी के क़याम और उसके असर का ज़रिया बनाया गया है। अतः इस्लाम के प्रचार के काम को जितनी हिकमत और मुख़्लिसाना जज़्बे (विशुद्ध भाव) से अंजाम दिया गया उतना ही इस्लामी ज़िन्दगी को मक़बूलियत और कामयाबी हासिल होगी। हमको मुसलमानों के इतिहास में उसकी स्पष्ट मिसालें मिलती हैं। इस्लाम की शुरूआत के मक्की दौर में जिस अज़ीमत और इख़्लास (महानता व विशुद्धता) से यह काम लिया गया उसके लिहाज़ से मुसलमानों को आगे के लिये ताक़त व इज़्ज़त हालिस हुई।

इस्लाम में दावत के काम में ज़ोर–ज़बरदस्ती से परहेज़ का पाठ पढ़ाया की गयी है और नसीहत व ताकीद के तरीक़ों को अपनाने पर ज़ोर दिया गया है। और उसके साथ ख़ुद दावत देने वाले के चरित्र, स्वभाव व आचार–व्यवहार का महत्व बताया गया है और इतिहास गवाह है कि इस्लाम की प्रसिद्धि और प्रभाव में इस्लामी की दावत देने वाली के चरित्र व स्वभाव का अमली प्रदर्शन और सामने वाले की मानसिकता का लिहाज़ प्रभावित करता रहा है। कई बार किसी एक वाक़्ये से पूरी–पूरी जमाअत राहे हिदायत पा गयी है। इतिहास में इसकी बहुत सी घटनाएं हैं। सुहल हुदैबिया के वक़्त से दो साल तक जो आपस में मुलाक़ात और मेलजोल का मौक़ा हासिल हुआ उसमें ग़ैर मामूली तरीक़े से दावत के काम को कामयाबी मिली। उसकी बड़ी वजह यह हुई कि ग़ैरों को मुसलमानों और उसके दरमियान मुलाक़ात व मामलात के ज़रिये मुसलमानों के अख़लाक़ व हुस्ने सीरत और इन्सानियत नवाज़ी से वाकिफ़ होने का मौक़ा मिला और उनको इस्लाम और मुसलमानों के सिलसिले में जो ग़लत फ़हमियां थीं वह दूर हुईं।

हमारे मुल्क हिन्दुस्तान की सूरतेहाल भी कुछ ऐसी ही है। यहां मुसलमान बड़ी संख्या में ज़रूर हैं लेकिन उनके हम वतन उनके सही इस्लामी किरदार व अख़लाक़ से परिचित नहीं हो पाते। जिसकी बड़ी वजहें दो हैं: एक तो यह कि मुसलमानों का बड़ा तबक़ा ख़ुद इस्लामी अख़लाक़ व किरदार को अपनाने में कोताह नज़र आता है, वह अपनी इस्लामी सीरत व किरदार का पूरी तरह हामिल नहीं देखा जाता। दूसरी वजह यह है कि ग़ैरों के साथ मेल–जोल में मुसलमान आम तौर पर इसकी कोशिश भी नहीं करते कि ग़ैरों को इस्लामी अख़लाक़ व मामलात से परिचित कराएं और उनके ज़हनों में जो ग़लतफ़हमियां और बदगुमानियां हैं वह दूर करें। उनकी यह कमज़ोरी शायद इसलिए भी है कि अक्सर मुसलमान दावत देने वाली उम्मत होने के बावजूद उम्मत–ए–दावत होने का एहसास नहीं रखते। अगर उनको यह एहसास हो और वो उसकी मांगों को पूरा करें तो उसके बहुत अच्छे नतीजे सामने आएं। अल्लाह तआला ने इस उम्मत (समुदाय) की ख़ासियत यह बतायी है कि "और हमने तुमको ऐसी एक जमाअत बना दी है जो एतदाल वाली (और मेयारी सतह) पर है ताकि तुम लोगों पर गवाह और उन पर नज़र रखने वाले हो, और तुम्हारे लिये रसूल (स0अ0) गवाह हों।" और फ़रमाया कि: "तुम लोग अच्छी जमाअत हो जो लोगों के लिये पैदा की गयी, तुम नेक कामों को बतलाते हो और बुरी बातों से रोकते हो और अल्लाह तआला पर ईमान लाते हो।" अतः यह उम्मत संतुलित व उच्चस्तरीय उम्मत और क़ौमों की गवाह और उन पर नज़र रखने वाली उम्मत है। अपने सामने की क़ौमों पर नज़र रखने

और उनकी ग़लतियों और गुमराहियों की निशानदेही करने वाली उम्मत है और जब उसको यह उहदा दिया गया तो अब उसका फ़र्ज़ बनता है कि इस उदहे का हक़ अदा करे।

दुनिया के वे देश जहां मुसलमान बहुसंख्यक हैं और जहां सत्ता उनके हाथों में है वहां सुधार का यह काम ज़्यादातर सरकारी साधनों से किया जाता है और इस तरह मुल्क व क़ौम के लोगों को ग़लत कामों से रोका और उनसे बचाया जाता है और सुधार व दावत का काम जनस्तर पर भी जनस्रोत्रों से किया जाता है और यह ज़िम्मेदारी बुद्धिजीवियों पर आती है। लेकिन वे मुल्क जहां मुसलमान अल्पसंख्यक हों वहां हुकूमती पैमान पर तो यह काम अंजाम नहीं दिया जा सकता लेकिन ''अम्र बिल मारूफ़ नही अलिन मुनकिर'' का काम बहरहाल देश के बुद्धिजीवी वर्ग के ज़िम्मे आता है और इस तरह यानि दूसरों के निगरां और रहनुमा होने का जो मंसब है उसकी मांगों की पूर्ति की जा सकती है।

हिन्दुस्तान में हमारे सामने यही सूरतेहाल है। हम मुसलमान होने की हैसियत से यहां के अपने हमवतनों को उन सब बातों से आगाह कर सकते हैं जिनसे यह आगाह नहीं हैं, कि यह दुनिया अकेले अल्लाह तआला की बनायी हुई है और वही तन्हा इसको चला रहा है और उसी ने इसमें बसने वालों की ज़रूरत का सामान मुहैया किया है लेकिन इस बात की ताकीद की है कि जिन्दगी को मानवीय मूल्यों को अपनाते हुए गुज़ारा जाये और अपने मालिक व मोहसिन के एहसान को माना और उसका शुक्रगुज़ार हुआ जाये और अल्लाह तआला की इबादत और उसके हुक्मों की ताबेदारी के ज़रिये ही हो सकता है। जो वही (ईशवाणी) के ज़रिये नबी (स0अ0) के वास्ते से मालूम होते हैं। मुसलमानों का यह कर्तव्य रखा गया है कि वह इन बातों से लोगों को परिचित कराएं और ख़राब और बुरे कामों से बचने की ताकीद करें और नेक बातों पर अमल न करने वालों पर नज़र रखें कि क़यामत के रोज़ जब अल्लाह के सामने पेशी होगी तो कह सकें कि ऐ अल्लाह हमने कोशिश की, हमने क़ौमों का अमल देखा और इस तरह वे अपने आस-पास की क़ौमों के बारे में गवाही दे सकेंगे।

और जवाबदेही के इसी काम के लिये अल्लाह तआला ने क़यामत का दिन रखा है और हिसाब व किताब के अंजाम पा जाने पर दोबारा राहत व तकलीफ़ की बहुत लम्बी बल्कि न ख़त्म होने वाली ज़िन्दगी रखी है। वह हिसाब-किताब से हासिल होने वाले नतीजे के मुताबिक़ होगी। ग़लतकारों को सज़ा और नेकाकारों को जज़ा मिलेगी।

दावती अमल का एक बहुत बड़ा फ़ायदा यह है कि उसके ज़रिये इन्सानी ज़िन्दगियों में बराबरी पैदा होती है और नेकी व बदी के फ़र्क़ का समझना और उसके तहत अपनी ज़िन्दगियों को इन्सान के आला ओहदे के मुताबिक़ गुज़ारना आसान हो जाता है। इस्लाम ने ज़िन्दगी को अपने परवरदिगार के हुक्म के मुताबिक़ गुज़ारने की अहमियत व ज़रूरत को बताने के लिये बार-बार नबी भेजे और उनको वही के ज़रिये अपने हुक्म बताए और आख़िर में हमारे नबी हज़रत मुहम्मद (स0अ0) भेजे गये। उन्होंने जो तालीम हमको पहुंचायीं वह इन्सानी जिन्दगी के लिये बहुत ही लाभदायक और कारामद तालीम हैं। इनमें ज़िन्दगी की सहूलियतों की रियायत भी रखी गयी है और अमन व शांति व आपसी भाइचारे और ख़ैरख़्वाही और हमदर्दी का पैग़ाम भी है। इनमें इन्सानों की सलामती और हुस्ने किरदार को अहम जगह दी गयी है। यह इस्लाम की ऐसी विशेषता है कि इस पर इसका नाम भी ''मुस्लिम'' पड़ा। जिसके माने अमन के हैं। लिहाज़ा मुसलमानों का फ़र्ज़ बनता है कि वे इस पैग़ामें अमन व ख़ैरपसंदी से दूसरों को परिचित कराएं और बिना किसी ज़ोर ज़बरदस्ती के लोगों को इसको समझने पर आमादा करें। इसके लिये जैसे माहौल और जैसे हालात से वास्ता और ताल्लुक़ हो उनका लिहाज़ करते हुए दावत का काम अंजाम दें। इसमें इन्सानों की ख़ैरख़्वाही भी है और आलमी सतह पर भाई चारा और ख़ैर पसंदी भी है।

दावत के इस महाल काम के लिये हमको जिन साधनों की ज़रूरत है, उनमें व्यवहारिक साधन भी हैं और उपाय के साधन भी। उपाय के साधनों में सामने

वाले की ज़बान से परिचित होना और उनका इस्तेमाल बड़ी अहमियत रखता है। दावत का काम जिस माहौल में करना है, उस माहौल की प्रचलित भाषा को उसके दिलनशीं अंदाज़ के साथ अख़्तियार करते हुए इस्तेमाल करना प्रभावशाली ज़रिया साबित हुआ है। इसके लिये उस ज़बान में महारत पैदा करनी होती है। कुरआन मजीद में इसकी तरफ़ इशारा मिलता है, कहा गया: "और हमने तमाम (पहले) पैग़म्बरों को (भी) उन्हीं की क़ौम की ज़बान में पैग़म्बर बनाकर भेजा है ताकि उनसे (वज़ाहत के साथ) बयान करें।"

और हम जब हिन्दुस्तान में हैं तो यहां के एतबार से हमको काम करना होगा और हमारा यह मुल्क विभिन्न सभ्यताओं, विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मों का देश है और यह अपने क्षेत्र के एतबार से भी बहुत बड़ा है और स्वभाविक हालात के लिहाज़ से भी प्रभाव रखता है। और इसी प्रभाव की वजह से यहां का क़ानून बनाने वालों ने इसको सेक्युलर देश बनाया। सेक्यूलर इसीलिए कि सबको समान अधिकार प्राप्त हों और सेक्युलर इसलिए कि किसी एक मज़हब या तहज़ीब वाले को दूसरे के मज़हब और तहज़ीब के साथ ज़बरदस्ती और ज़्यादती करने का हक़ न हो। उसी की बुनियाद पर यहां विभिन्न धर्मों और विभिन्न संस्कृतियों वाले आपस में मिलजुल कर रहते हैं और देश की सलामती के लिये यही बात ज़रिया बनी हुई है। यहां उदारता का गुण हर वर्ग और हर समुदाय को अपनाना करना देश के हित में है। इस बात को मुल्क के हर तबके को चाहे वह हुकूमती हो या जनता हो और हर फ़िरक़े और हर तहज़ीब, हर मज़हब और हर ज़बान के लोगों को समझना है और रवादारी को न अख़्तियार करने की सूरत में मुल्क के विभिन्न वर्गों की रूपरेखा शीशे के ऐसे गिलासों की भांति हो सकती है जो आपस में टकराएं। ज़ाहिर है सब गिलास टूटेंगे और बेकार हो जाएंगे।

मुल्क के ज़िम्मेदारों और दानिशवरों को इस बात को अच्छी तरह समझना होगा कि किसी वर्ग का चाहे कितना प्रभावशाली हो दूसरे वर्ग पर जबर किसी तहज़ीब का दूसरों की तहज़ीब पर जबर, किसी ज़बान का दूसरी ज़बान पर जबर, सिवाय आपसी कशमकश और टकराव पैदा करने और कोई अच्छा नतीजा नहीं पैदा कर सकता। इन्सानों को अल्लाह तआला की तरफ़ से तत्वदर्शिता की जो योग्यता मिली है उसको सही इस्तेमाल करने से आपस में निकटता और एक–दूसरे को समझने में आसानी पैदा होती है और आपस के मेल–जोल अख़्तियार करने से एक दूसरे से फ़ायदा उठाने और फिर अपने तर्जुबे से फ़ायदा उठाने का मौक़ा मिलता है।

और उसके नतीजे में चाहे तहज़ीबें हो या ज़बाने या मजहब इनके दरमियान एक–दूसरे से फ़ायदा उठाने का मामला चलता है। एक तहज़ीब दूसरी तहज़ीब से, एक ज़बान दूसरी ज़बान से यहां तक कि मज़हब के मामले में भी बेहतर और फ़ायदेमन्द को मालूम करने में फ़ायदा होता है। इस ग़रज़ से दुनिया में डायलाग का भी तर्जुबा किया गया। यह डायलाग यानि आपस में विचार–विमर्श अपने आप में अलग तरह का फ़ायदा रखता है। इसके ज़रिये इन्सान जड़ता से निकलकर बड़े दायरे में आता है और नीचे से उभरकर ऊपर आता है।

उसकी सबसे बड़ी मिसाल हमारे हुज़ूर हज़रत मुहम्मद (स0अ0) का तरीक़ा था। उनकी रहनुमाई ईशवाणी के द्वारा होती थी। आपने जब ईशवीण से मिली हुई हिदायतों को अपनी क़ौम के सामने रखा और आपकी क़ौम आपके ख़ानदान ही की थी। उनके सामने बड़े और छोटे का फ़र्क़ व लिहाज़ रखते हुए जब आपने आसमानी रहनुमाई वाली बात रखी तो यह उन लोगों के लिये एक तरह से नयी बात थी। लिहाज़ा उन्होंने सुनने से इन्कार किया और कहा कि बस हम जो करते आएं हैं हम उनके अलावा कुछ सुनने के लिये तैयार नहीं और जब उनको मुख़ातिब किया गया तो कान में उंगली दे लेते और कहते कि हम नई बात नहीं सुनेंगे। लेकिन आपकी बात ऐसी थी कि जिसमें क़ौम का फ़ायदा और हालात की बेहतरी और मुल्क व क़ौम की तरक़्क़ी थी। जब इसमें से किसी के कान में ठीक से पड़ जाती तो उसका ज़हन बदल जाता। हुज़ूर (स0अ0) इख़लाक़ व

मुहब्बत और भलाई भरे अंदाज़ से अल्लाह की वही से हासिल बात उनके सामने रखते रहे। आप उनके न सुनने पर नाराज़ नहीं होते थे। बल्कि हमदर्दाना रवैये के साथ अपने भलाई की भावना का इज़हार करते और क़ौम के लोगों के गुस्से व गर्मी तक को बर्दाश्त कर लेते थे। आपको अल्लाह तआला का हुक्म भी यही था कि तुम उन पर यह ख़ैरख़्वाहाना बात जबरन मुसल्लत न करो। माने तो माने और न माने तो यह अपना ही नुक़सान करते हैं। तुम पर इसकी ज़िम्मेदारी नहीं है कि तुम ज़बदरस्ती मनवाओ। आपने इस पर अमल किया और इसी को इस्लाम का उसूल बताया कि भलाई भरे अंदाज़ में अच्छी बातों की तरफ़ बुलाया जाए और मनवाने के लिये मजबूर न किया जाये। मगर इसमें अस्ल उसूल यह है कि भलाई का जज़्बा हो कि ग़लत रुख़ अख़्तियार करने वालों और हानिकारक तौर व तरीक़े अपनाने वालों के ग़लत राहों पर चलने से दिल दुखे कि यह अपने भाई बन्द है और अपना नुकसान कर रहे हैं और यह जज़्बा हो कि हम किस तरह उनको सही राह पर ले आएं। ख़ुद भी अच्छे तौर व तरीक़ पर कारबन्द हों और दूसरों को भी बेहतर राह अख़्तियार करने के लिये दिल में तड़प पैदा हो। यही वह तड़प है जो भलाई के जज़्बे के साथ दूसरों को अपनी तरफ़ खींचती है और उसके बेहतरीन नजाएज सामने आते हैं।

मुसलमानों को उम्मत–ए–दावत का ख़िताब अता किया गया है कि वे ख़ैर की तरफ़ बुलाएं और शर (नुक़सान) अख़्तियार करने से मना करें। इस ख़ासियत का तक़ाज़ा है कि हम दूसरों को सही बात बताएं और ऐसा अंदाज़ अख़्तियार करें कि मुहब्बत और भलाई के जज़्बे के साथ हमारी हमदर्दी सामने आये। इस तरह हमारी बात अपनाइयत के साथ सुनी जा सकती है। और जब हम अच्छी बातों की तरफ़ दावत देते हैं तो यह भी हमारी बात को वज़न देती है और इसके ज़रिये हम ख़ैर को आम करने वाले और इन्सानियत को सलाह व फ़लाह की तरफ़ ले जाने वाले बनते हैं। यह इस मुल्क में हमारा फ़र्ज़ बनता है क्योंकि यहां विभिन्न धर्मों और विभिन्न सभ्यताओं, संस्कृतियों व भाषा के मध्य हम रहते हैं, और हम एक उम्मत अर्थात समुदाय हैं तो दावत के इस्लामी उसूलों को अपनाते हुए हम लोगों को शर के रास्ते से हटने और ख़ैर का रास्ता अख़्तियार करने की तरफ़ तवज्जो दिला सकते हैं और यह हमको करना चाहिये। यह इस देश के लिये भी मुफ़ीद है और हमारे वज़न को महसूस कराने वाली बात भी है। और इन्सानियत की सलाह व फ़लाह का भी काम है जिसकी ज़िम्मेदारी बहैसियत एक नेक सीरत और इन्सानित के ख़ैरख़्वाह के हम पर आयद होती है कि हम ख़ुद भी अच्छे इन्सान बने और अपने मालिक रब्बुल आलमीन के हुक्मों पर चलें और दूसरों को भी उसी तरफ़ ध्यान दिलाएं और यह बात हमारे दानिशवरों के तरफ़ से दानिशवरों के साथ और हमारे अवाम की तरफ़ से यहां के अवाम के साथ ख़ैरख़्वाही और दाइयाना रवैया अख़ितयार करने से अंजाम पा सकती है।

शेष: अनिवार्य बनाम स्वैच्छिक देशभक्ति

.........सहज और नुक़सानदेह मनोरजंन करने वाली जगहों को अतिराष्ट्रवाद का मंच क्यों बनाया जा रहा है।

महान अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कींस ने कहा था, 'जब तथ्य बदल जाते हैं तब मैं अपना मन बदल देता हूं।' यह ऐसा सिद्धान्त है जिसका सभी संवेदनशील और तर्कशील लोगों के साथ ही देशभक्त लोगों को अनुकरण करना चाहिये। राष्ट्रगान की अनिवार्यता नुक़सानदेह साबित हुई है, इसलिए यह सराहनीय है कि सर्वोच्च न्यायालय इस पर फिर से विचार कर रहा है। हाल में हुई सुनवाई में जस्टिस डी वाई चन्द्रचूण ने टिप्पणी की, 'लोग सिनेमाघरों में ख़ासिल मनोरंजन के लिये जाते हैं। आपको अपनी देशभक्ति साबित करने के लिये सिनेमाघरों में खड़े होने की ज़रूरत नहीं है।'

सचमुच ऐसा है। देश भक्ति के प्रदर्शन का सबसे टिकाऊ और मज़बूत रूप इसका स्वैच्छिक और स्वस्फूर्त प्रदर्शन है, न कि संगठित और दबावपूर्वक। महान देशभक्तों को रोज राष्ट्रगान के गायन और राष्ट्रध्वज की रोज़ पूजा करने की ज़रूरत नहीं है। इसके बजाय उन्हें अपने निजी और पेशेवर जीवन में स्वतन्त्रता, समानता, समृद्धि और बहुलता को बढ़ावा देना चाहिये।

(अमर उजाला से साभार)

क्रमवार:

एकेश्वरवाद क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

अल्लाह और बन्दे का हक़: हज़रत मआज़ बिन जबल रज़ि0 से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने इरशाद फ़रमायाः मआज़! क्या तुम जानते हो अल्लाह का बन्दों पर क्या हक़ है?हज़रत मआज़ रज़ि0 ने अर्ज़ किया कि अल्लाह और उसके रसूल ज़्यादा जानते हैं। रसूलुल्लाह (स0अ0) ने फ़रमायाः अल्लाह का हक़ बन्दों पर यह है कि उसकी इबादत करें और उसके साथ किसी को शरीक न करें (फिर फ़रमाया) क्या तुमको मालूम है कि बन्दों का अल्लाह पर क्या हक़ है? जवाब में हज़रत मआज़ ने फिर कहा कि अल्लाह और उसके रसूल ज़्यादा जानते हैं, रसूलुल्लाह (स0अ0) ने फ़रमाया कि अल्लाह पर बन्दों का यह हक़ है कि वह उन्हें अज़ाब न दे। (बुख़ारी)

इस रिवायत में अल्लाह के रसूल (स0अ0) ने हज़रत मआज़ को ख़िताब करके एक बात इरशाद फ़रमायी कि मआज़! क्या तुम जानते हो कि बन्दों पर अल्लाह का हक़ क्या है? दरअस्ल अल्लाह के रसूल (स0अ0) का बात पहुंचाने और तरबियत कर यह एक तरीक़ा था, अगर आप (स0अ0) को कोई बात कहनी होती थी तो अक्सर आपको रिवायात में यह बात मिलेगी कि आप पहले ही मरहले में बात नहीं कह देते थे, बल्कि पहले मुतव्वजह करते थे, क्योंकि जब आदमी मुतवज्जह हो जाता है तो बात को तवज्जो से सुनता है, कान लगाकर सुनता है, इसीलिए आपने देखा होगा कि बहुत सी हदीसों में आता है कि आप (स0अ0) ने फ़रमायाः या मआज़ और उन्होंने जवाब दिया लब्बैक या रसूलुल्लाह व सादैक। बहुत सी रिवायतों में आता है कि हज़रत मआज़ बिल्कुल पीछे बैठे थे, लेकिन उसके बावजूद आप बार–बार कह रहे हैं कि ''ऐ मआज़'' और वे कह रहे हैं ''या अल्लाह के रसूल! मैं हाज़िर हूं।''

ज़ाहिर बात है कि जब बार–बार ख़िताब किया जायेगा तो मुख़ातिब ख़ुद सोचेगा कि पता नहीं क्या बात कही जाने वाली है, लगता है बड़ी अहम बात है, इसीलिए आप बार–बार ख़िताब कर रहे हैं, चुनान्चे यहां भी आप (स0अ0) ने इसी तरीक़े को अपनाते हुए पहले मुतव्वजह किया, हालांकि अगर आप (स0अ0) चाहते तो सीधे–सीधे ख़िताब कर देते और वह बात आ जाती। आप चाहते तो साफ़ कह देते कि बन्दों पर अल्लाह का हक़ यह है कि बन्दे अल्लाह के साथ शरीक न करें और अल्लाह पर बन्दों का हक़ यह है कि अल्लाह उनको अज़ाब न दे, एक यह तरीक़ा था, लेकिन आपने यह तरीक़ा अख़्तियार नहीं किया, बल्कि आपने फ़रमाया कि ऐ माज़! तुमको मालूम है कि बन्दों का अल्लाह पर क्या हक़ है? गोया इस सवाल से कान खुल गये, दिमाग़ की खिड़कियां खुल गयीं, जो बन्द दरवाज़ा था, खुल गया, अब जो अस्ल बात है वह बात आप (स0अ0) फ़रमा रहे हैं, फ़रमायाः अल्लाह का बन्दों पर यह हक़ है कि बन्दे सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी करें, बन्दे सिर्फ़ अल्लाह की इबादत करें, और उसके साथ ज़रा भी शरीक न करें।

अल्लाह का हक़: यह हक़ बन्दों पर अल्लाह का है। इसलिए कि अल्लाह ही ने बन्दों को पैदा किया है, उसी ने उनकी ज़रूरतें पूरी कीं, दुनिया में ज़िन्दगी देने वाला, ज़रूरतें पूरी करने वाला वही है, तो क्या किसी और का यह हक़ है कि उसको छोड़कर किसी और को पूजा जाये, किसी की बन्दगी की जाये, गोया जो हक़ था वह आप (स0अ0) ने बयान फ़रमाया कि जब सबकुछ अल्लाह की तरफ़ से मिलता है तो बन्दे पर भी यह हक़ है कि वह बन्दा सिर्फ़ अल्लाह को माने। तन्हा अल्लाह की बन्दगी और उसकी इबादत करे। उसके साथ ज़रा भी किसी को शरीक न करे। वाक्या यह है कि अगर इस हदीस पर ग़ौर किया जाये तो इसमें सारी बातें आ गयीं। बन्दगी में बन्दगी के जो तरीक़े आप (स0अ0) ने बताये हैं

वह सब शामिल हैं। बन्दगी में सिर्फ़ अक़ीदा शामिल नहीं है, बल्कि बन्दगी में वह सारी इबादतें शामिल हैं जो आप (स0अ0) ने इरशाद फ़रमायीं, ज़िन्दगी गुज़ारने की दूसरी शक्लें भी इसमें आती हैं, जिनको आदमी अख़्तियार करता है। तो यह सारी चीज़ें बन्दगी में शामिल हैं। उर्दू में इबादत का तर्जुमा बन्दगी से किया जाता है और ख़ुद इबादत का लफ़्ज़ भी उर्दू में इस्तेमाल होता है, जब यह लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है तो कभी–कभी लोग यह समझते हैं कि जो ज़ाहिरी इबादत हैं बस वह अख़्तियार की जाये वग़ैरह और जो ज़िन्दगी गुज़ारने की दूसरी शक्लें हैं, वे इसमें शामिल नहीं समझी जातीं। लोग उनको इबादत नहीं समझते, हालांकि अल्लाह ने क़ुरआन में यह बात फ़रमायी है कि :

"और हमने इन्सान को और जिन्नातों को तो सिर्फ़ इसलिए पैदा किया कि वे मेरी बन्दगी करें।"

(सूरह ज़ारियात: 56)

यहां तख़लीक़ का मक़सद इबादत बताया गया है। इबादत का क्या मतलब है? क्या यही है कि बन्दा नमाज़, रोज़ा, ज़कात और हज ही में लगा रहे, जो ज़ाहिरी इबादतें हैं उनमें लगा रहे, सोचने की बात है कि क्या यह किसी इन्सान के लिये मुमकिन है, जो बुलूग़ के बाद से मरने तक उन्हीं कामों में लगा रहे? ज़ाहिर है कि यह किसी के बस में नहीं है, अल्लाह ने ज़िन्दगी दी है तो उसके तक़ाज़े भी रखे हैं, उन तक़ाज़ों को पूरा करना इन्सान के लिये लाज़िम करार दिया है। अगर कोई उन तक़ाज़ों को नहीं पूरा करेगा तो उसके लिये ज़िन्दा रहना मुश्किल है, इसलिए अल्लाह ने जो बात फ़रमायी है कि हमने तुम्हें बन्दगी के लिये पैदा किया, इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला ने इन्सान को जो ज़िन्दगी दी है, ज़िन्दगी के जो तक़ाज़े रखे हैं, ज़िन्दगी की जो ज़रूरियात रखीं हैं और ज़िन्दगी के जो एहकामात रखे हैं, उन तमाम चीज़ों में अल्लाह के रसूल स0अ0 की ताबेदारी करे, आपने जिस तरह फ़रमाया उस तरह वह ज़िन्दगी गुज़ारे।

इबादत का अर्थ: इबादत में दो बातें हैं, अगर दो चीज़ का लिहाज़ रखा जाये तो आदमी की पूरी ज़िन्दगी इबादत है। एक तो यह कि आदमी जो काम करे, सही तरीक़े के मुताबिक़ करे, सही तरीक़ा क्या है? अल्लाह के रसूल (स0अ0) का बताया हुआ जो तरीक़ा है वह सही है, उसके अलावा ज़ाहिर है कि आदमी अपनी अक़्ल से जो तरीक़ा तजवीज़ करेगा तो चूंकि अक़्ल नाक़िस है, इसलिए अक़्ल जो तजवीज़ करेगी उसमें हज़ार नुक़्स होंगे। अक़्ले अलग–अलग होती हैं, हर अक़्ल की तजवीज़ अलग होगी, इसलिए आप (स0अ0) ने जो तजवीज़ फ़रमा दी, उसकी जो शक्ल बयान कर दी, वही हमारे लिये काफ़ी होना चाहिये। क्योंकि आप (स0अ0) जो भी फ़रमाते हैं, वह अपनी तरफ़ से नहीं होता, अल्लाह तआला का इरशाद है:

"और वो ख्वाहिश से नहीं कहते वह तो सिर्फ़ वही है जो उन पर की जाती है।" (सूरह नज्मः 2–3)

मालूम हुआ कि आप (स0अ0) का हर फ़रमान अल्लाह की तरफ़ से है। फिर आप (स0अ0) जो अपनी बात अक़्ल से फ़रमाएंगे, ज़ाहिर है कि आप (स0अ0) की जो अक़्ल है उसको अल्लाह तआला ने जो कमाल अता किया है, वह भी ऐसा है कि अगर सारी दुनिया के अक़्ल वाले इकट्ठा हो जाएं, सब इन्सान इकट्ठा हो जाएं, उनकी अक़्ले एक पले में रक्खी जाये और आप स0अ0 की अक़्ल मुबारक एक पल्ले में रखी जाये तो आपका जो पल्ला है वह झुक जायेगा, तो एक तो यह कि आपको अल्लाह ने जो समझ दी है और अक़्ल दी है वह आख़िरी दर्जे में है और दूसरी बात यह है कि आप जो भी फ़रमाते हैं वह अल्लाह का कहा हुआ है। अल्लाह जो फ़रमाता है, जो वही आती है, आप वह फ़रमाते हैं अपनी तरफ़ से कुछ नहीं कहते हैं। और आप जो अपनी तरफ़ से कहते हैं वह मोईद मन अल्लाह होता है और अगर कोई बात ऐसी होती है तो फ़ौरन अल्लाह की तरफ़ से हुक्म आ जाता है कि उसके मुक़ाबले में ऐसा कर लेना ज़्यादा मुनासिब है। क़ुरआन मजीद में इसकी बहुत सी मिसालें हैं। इसलिए यह बात तय है कि आप (स0अ0) का जो फ़रमाया हुआ है, वही शरीअत है, और आप (स0अ0) का जो फ़रमाया हुआ है वही ख़ैर की मीज़ान है। आप जो फ़रमा दें वह ख़ैर है। आप जिस चीज़ से रोक दें वह शर है। गोया बन्दगी का ख़ुलासा यह हुआ कि जो तरीक़ा आप (स0अ0) ने बताया है, हर काम उसी तरीक़े के मुताबिक़ किया जाये।

......(शेष पेज 17 पर)

मदीना के यहूदी

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

यहूद की मदीने में आमद कब हुई, क्या यह क़बीले एक साथ आये या मरहलावार आये। इसके बारे में कोई कतई बात नहीं कही जा सकती। बाज़ मोअर्रिख़ीन ने लिखा है कि मदीने में बहुत पहले से अमालक़ा आबाद थे। हज़रत मूसा ने मिस्र से निकलने के बाद एक लश्कर को हिजाज़ की तरफ़ भेजा और उसका हुक्म दिया कि तमाम अमालीक़ का ख़ात्मा कर दिया जाये। यह लश्कर यहां आया और उसने तमाम अमालीक का ख़ात्मा कर दिया। बस एक नवजवान जो निहायत ख़ूबसूरत था उसकी जवानी और ख़ूबसूरती पर रहम खाकर उसे ज़िन्दा रखा। जब यह लोग वापस शाम गये तो हज़रत मूसा का इन्तिक़ाल हो चुका था। उस वक़्त वहां मौजूद बनी इस्राईल ने इस लश्कर से कहा कि चूंकि तुमने उस नवजवान को ज़िन्दा रखकर हज़रत मूसा के साथ अहद शिकनी की है इसलिए तुम यहां नहीं रह सकते हो। जहां से आये हो वहीं जाओ। लिहाज़ा यह लश्कर दोबारा यहां आकर आबाद हुआ। इस वाक़्ये की तारीखी हैसियत से क़तअ नज़र इसमें मौजूद दास्तान सराई को कोई माकूल शख़्स कुबूल नहीं कर सकता। मिस्र से निकलने पर बनी इस्राईल की जो हालत थी वह ज़ाहिर है। ऐसी हालत में क्या बनी इस्राईल इस पोज़ीशन में थे कि सीधे यसरब आकर चढ़ाई करते और फ़तेह भी हासिल करते वह भी उस अमालक़ा के ख़िलाफ़ जिनकी जंगजूंआना तबियत मशहूर थी। यह पूरी दास्तान और ज़ेब दास्तान दोनों अक़्ली व तारीख़ी तौर पर क़ुबूल करने के लायक़ नहीं। दूसरी रिवायत यह है कि हज़रत दाऊद के फ़रज़न्द ने जब बग़ावत की "हज़रत सुलेमान के अलावा कोई और फ़रज़न्द" तो हज़रत दाऊद भागकर ख़ैबर आये फिर कुछ अर्से के बाद दोबारा अपने फ़रज़न्द के ख़िलाफ़ उनको फ़तेह मिली तो आप शाम चले गये और उसी वक़्त से ख़ैबर में यहूद आबाद हुए। यह पहले वाक़्ये से बढ़कर अक़्ली लिहाज़ से कमज़ोर मालूम होता है। हज़रत दाऊद के ताल्लुक़ से यहूदी और इस्लामी मसाविर में कहीं इस तरह का इशारा नहीं है कि इनको फ़रार अख़्तियार करके ख़ैबर में पनाह लेनी पड़ी हो। इतना ज़रूर है कि हज़रत दाऊद सुलेमान के ज़माने में जब बनी इस्राईल की इन्तिहाई मुस्तहकम हुकूमत क़ायम हुई तो उनके तिजारती क़ाफ़िले भी मुख़तलिफ़ जगहों पर जाने लगे। मलिका सबा के इस्लाम लाने के बाद तो यह सिलसिला और भी ज़्यादा मज़बूत हुआ। अहदनामा क़दीम में यहूद की तिजारत का तज़किरा मिलता है। जो शाम मुल्के सबा तक जारी था। मुमकिन है कि इस दौरान बाज़ यहूद जज़ीरतुल अरब के शुमाली ज़रखेज़ हिस्सों में आबाद हुए हों लेकिन हज़रत सुलेमान (अलै0) की शानदान हुकूमत के तहत तहज़ीब व तमद्दुन के गहवारे में रहने के बजाए एक दूर-दराज़ के इलाक़े में बाज़ कबाएल का मुक़ीम होना भी ग़ैर फ़ितरी सा मालूम होता है।

मुअर्रिख़ीन का आम ख़्याल यह है कि यहूद की हिजरत का सिलसिला पहली और दूसरी सदी ईसवी में शुरू हुआ। इसकी पहली वजह यह बतायी जाती है कि उनकी तादाद बहुत बढ़ गयी थी और फ़िलिस्तीन की ज़मीन उनके लिये नाकाफ़ी साबित होने लगी तो क़रीबी इलाक़ों में उनकी हिजरत का सिलसिला हुआ। ख़ासकर मिस्र, इराक़ और जजीरतुल अरब उनके लिये सबसे आसान मक़ामात थे।

दूसरी वजह जो सबसे अहम मालूम होती है कि एक सदी क़ब्ले मसीह से ही सरज़मीने फ़िलिस्तीन पर रूमियों के हमले शुरू हो चुके थे जिसके नतीजे में यहूद की बची-खुची हुकूमत में भी दरारें पड़ना शुरू हो गयीं। यहूद की तरफ़ से बार-बार बग़ावतें होती रहीं जिनको रूमियों की तरफ़ से निहायत सख़्ती से कुचला जाता। यहां तक कि सत्तर ईसवी में रूमियों ने बैतुल मुक़द्दस को तबाह

किया और उस पूरे ख़ित्ते की ईंट से ईंट बजा दी। इस पूरी मुद्दत में सिलसिलेवार हिजरत शुरू हुई और जब बैतुल मुक़दस तबाह किया गया तो बहुत बड़ी तादाद में नक़लमकानी की हो और उनकी एक बड़ी तादाद यसरब वादिउल क़री, ख़ैबर और फ़दक में आकर बस गयी हो। वल्लाहु आलम इस लिहाज़ से यह कहा जा सकता है कि ज़मानाए नुबूव्वत से पांच सौ साल क़ब्ल ही से यहूदी मदीना व एतराफ़ में आबाद थे।

औस व ख़ज़रज जब मदीना आये तो यहां यहूद का बोलबाला था। मदीना के ज़रखेज़ इलाक़ों पर वह क़ाबिज़ थे। लिहाज़ा उन्होंने अंदाज़ा यही है कि सबसे पहले बक़ा बाहमी के नाम पर यहूद के साथ मुसालहत आमेज़ रवैया रखा होगा। फिर अपनी हिफ़ाज़त के लिये यहूद ही की देखा देखी आताम बनाए ताकि ख़ारजी व दाख़िली दुश्मनी में किसी न किसी दर्जे में हिफ़ाज़त का सामान रहे। यूंकि यह यमन से आये थे जो ज़रई इलाक़ा था यहां भी इनको ज़रई ज़मीन मयस्सर थी। मज़ीद खुद यहूदी भी यही ज़ौक़ रखते थे, इसलिए औस व ख़ज़रज ने भी इस पर तवज्जे दी और अपने—अपने इलाक़ों को ज़रख़ेज़ बनाया। और ज़राअत व बाग़बानी में दिलचस्पी ली। ज़ाहिर बात है कि इनको इब्तिदाअन बहुत मेहनत करनी पड़ी और ख़ासीमुद्दत तक यहूद ही के ज़ेरे असर रहना पड़ा। एक तादाद तो यहूदियों के बाग़ात में काम भी करना पड़ा। जब औस व ख़ज़रत की हालात मुस्तहकम हो गयी तो उन्होंने बराबरी की सतह पर यहूदी से मुआहिदे किये जिसका यह नतीजा हुआ कि दो मुख़तलिफ़ क़ौम होने के बावजूद यसरब और उसके एतराफ़ की हद तक एक इत्तिहाद अमल में आया। और मुद्दत तक यही सिलसिला चलता रहा। लेकिन मजमूई तौर पर यहूद ताक़तवर रहे। और उनके मुक़ाबले में औस व ख़ज़रज निसबतन कमज़ोर समझे गये। जब तिजारत ज़राअत और दूसरे मैदानों में औस व ख़ज़रज भी ताक़तवर होते गये तो यहूद को एक ख़दशा सताने लगा कि कहीं यह अरबी क़बीले हम पर ग़ालिब न आ जायें। इसलिए उन्होंने बाहमी मुआहिदा तोड़ दिया और बाहम सर्द जंग के आसार नमूदार होने लगे। दूसरी तरफ़ औस व खज़रज अभी इस सतह पर नहीं पहुंचे थे कि बराहरास्त उनसे टक्कर लें। इसलिये कि अदवी लिहाज़ से भी बनूक़ुरैज़ा और बनू नज़ीर फ़ायक़ थे। और जंगी एतबार से भी उन्हीं को फ़ौक़ियत हासिल थी। इसलिए औस व ख़ज़रज कुछ दबे—दबे से रहने लगे। और मुमकिन हद तक यहूद से अपना दामन बचाये रखा कि कहीं मामूली चिंगारी जंगी शोला भड़का न दे जिसके नतीजे में उनको मदीना छोड़कर जाने पर मजबूर होना पड़े। ऐसी नाज़ुक सूरते हाल में औस व ख़ज़रज दोनों को मजबूर किया कि वे किसी से मदद लें। जिससे मौजूदा बेचैनी ख़त्म हो जाये और यहूद की तरफ़ से कोई खटक बाक़ी न रहे। यह वह दौर था जब शाम के एक ख़ास इलाक़े में आले ग़स्सान की हुकूमत थी। यह भी निसबतन यमनी क़बीला अज़्द से ताल्लुक़ रखते थे। दूसरे खुद औस व ख़ज़रज की मां भी ग़स्सानी थीं। गोया क़रीबी लिहाज़ से ग़सासना औस व ख़ज़रज की मां की निसबत से रिश्तेदार थे और बहुत ऊपर तक देखा जाये तो दोनों की बुनियाद एक थी। इसलिए खज़रज के एक सरदार मालिक बिन अजलान ने ग़स्सानियों से मदद लेने का फ़ैसला किया। अबू हीलीयह ग़स्सानी ने जो उस वक़्त हाकिमे ग़स्सान था उनकीमदद की। एक पूरी फ़ौज लेकर आया और यहूदियों के बड़े—बड़े रोअसा को क़त्ल कर दिया। यहूद पर ग़साना की धाक बैठ गयी। उसकी फ़ौज वापस चली गयी। औस व ख़ज़रज के हौसले बुलन्द हुए और अब उन्होंने कुछ ऊंची सतह के साथ यहूद से मामला करना शुरू किया। अब यहूद की हालत वह हुई जो पहले औस ख़ज़रज की थी। गरचे इसके बाद भी यहूद की तरफ़ से भी कुछ टकराव हुआ। लेकिन मालिक बिन अजलान ने ख़ास तदबीर से और बाज़ यहूदी सरदारों का ख़ात्मा कर दिया। फिर यह कैफ़ियत हुई कि खुद यहूद को ख़तरा पैदा हुआ कि कहीं वे मदीने से बेदख़ल न कर दिये जायें। यहूद ने छोटे मोटे क़बाएल से औस व ख़ज़रज की पनाह में ही आना मुनासिब समझा। उसके बाद जो दौर आया उसमें यहूद दबे रहे और औस व खज़रज का ग़लबा रहा। लेकिन धीरे—धीरे औस व ख़ज़रज में इख़्तिलाफ़ात शुरू हो गये जो बढ़ते—बढ़ते जंग की सूरत अख़्तियार कर गये और खुद उनमें बहुत सारी जंगे हुईं। जंगों का यह सिलसिला मुद्दतों चलता रहा जिसमें दोनों फ़रीक़ कमज़ोर भी हुए। अक्सर इन जंगों में ग़लबा ख़ज़रज ही का रहा। इस सिलसिले की आख़िरी जंग जंगे बुआस थी। जो हिजरत से पांच साल क़ब्ल पेश आयी। इसमें औस ख़ज़रज पर ग़ालिब रहे। इन आपसी

लड़ाइयों से यहूद ने भी फ़ायदा उठाया। वे यह चाहते थे कि उनमें लड़ाइयां जारी रहें वरना अगर यह मुत्तहिद रहेंगे तो कहीं खुद यहूद को जिलावतन होना पड़ जायेगा। इसलिए उनकी तरफ़ से शोलो को हवा देने का काम जारी रहा। चूंकि क़बीला औस की अक्सरियत यहूद क़ुरैज़ा व नज़ीर के पड़ोस में रहती थी। इसलिए औस को उनकी हिमायत हासिल रहती। इसलिए बनू क़ैनक़ाअ ख़ज़रत के क़रीब आबाद था इसलिए तबई तौर पर वे ख़ज़रज के हमनवां थे। अमली तौर इन यहूदी क़बीलों की शिरकत मालूम नहीं है लेकिन जंगे बुआस में यही मशहूर है कि बनू क़ुरैज़ा व नज़ीर अमलन औस के साथ थे और बनू क़ैनक़ाअ ख़ज़रज के साथ थे। अंदाज़ा यही है कि इन यहूदी क़बाएल को न चाहते हुए भी शरीक होना पड़ता या कम अज़ कम साथ निभाना पड़ता। इसकी दो वजहें थीं। पहली वजह हम बता चुके हैं कि इनमें तमाम यहूदी क़बालए का मफ़ाद था। इस औस व ख़ज़रज की लड़ाई जारी रहे वरना खुद यहूद का वजूद ख़तरे में पड़ जाता। दूसरी वजह इन्फ़िरादी थी कि अगर क़रीबी क़बीला साथ न देता तो खुद इस क़बीले के लिये दुश्वारियां खड़ी हो जातीं कि खज़रज बजाये औस से लड़ते बनू क़ैनक़ाअ ही से लड़ने लग जाते कि तुमने हमारा साथ क्यों नहीं दिया। फिर साथ देने के नतीजे में खुद यहूदी क़बाएल में भी लड़ाई की कैफ़ियत पैदा हो जाती। दूसरी तरफ़ औस के हलीफ़ बनू क़ुरैजा व बनू नज़ीर दोनों बाहम क़बाएली रक़ाबत रखते थे। बहर हाल यहूद इन लड़ाइयों का हिस्सा बने और मैदाने जंग में आने के बाद तो क़त्ल व क़िताल लाज़िम है। क़ुरआन करीम की आयत से इशारा माजी और हाल दोनों से मिलता है। जब इस्लाम का सूरज मदीना मुनव्वरा में चमका और आंहज़रत (स0अ0) हिजरत फ़रमा कर यहां तशरीफ़ लाये तो इस्लाम के नाम पर औस व ख़ज़रज एक हुए और रसूलुल्लाह (स0अ0) के अंसार बने। यहां तक कि इनका लक़ब ही अंसार बना। दूसरी तरफ़ आंहज़रत (स0अ0) की ज़ाते अतहर की वजह से हज़रात मुहाजिरैन व अंसार के दरमियान ऐसा बेमिसाल भाईचारा क़ायम हुआ जिसकी नजीर तारीखे इन्सानी में नहीं मिलती। यह कैफ़ियत देखकर यहूदे मदीना के कान खड़े हुए। उन्होंने खूब समझ लिया कि अब जो दौर आ रहा है उसमें यह मुमकिन नहीं कि मदीना के बाशिन्दों को बाहम लड़ाकर अपना उल्लू सीधा किया जाये। रसूलुल्लाह स0अ0 की जाते अतहर पर सबका इत्तिफ़ाक़ है। इसलिए यहूदे मदीना की रोज़े अव्वल से यह कोशिश रही कि आप (स0अ0) को किसी न किसी तरह ज़हनी या बदनी नुक़सान पहुंचाया जाता रहे। या आपको बदनाम करके लोगों के जहनों में आप के ताल्लुक़ से मौजूद ग़ैर मामूली अक़ीदत को ख़त्म किया जाये या कम किया जाये। गरचे उनके क़बाएल आप (स0अ0) के साथ किये हुए मुआहिदे में बज़ाहिर शामिल हो गये थे लेकिन अन्दर ही अन्दर खार खाये हुए थे। इसलिए लोग अपने दिल का कीना निकालने के लिये कभी आपको सलाम करते तो अस्सामअलैक कहते यानि आपको मौत आ जाये, कभी मजलिस में हाज़िर होते तो राइना कहते जिसका मतलब यह है कि हम पर तवज्जे फ़रमायें। लेकिन उसे इस तरह खींच कर कहते कि वह राईना बन जाता यानि हमारे चरवाहे। अपनी इन कमीना हरकतों से यह ख़बीस हसद की आग ठंडी करना चाहते। कौमी तौर पर देखा जाये तो हर यहूदी क़बीला आप (स0अ0) की जान का दुश्मन बना हुआ था। बनू क़ैनक़ाअ ने अपनी शरारत से मुआहिदा तोड़ा तो पूरा क़बीला जिलावतन किया गया। बनू नज़ीर ने धोखा देकर आप (स0अ0) की जान लेनी चाही जिसके नतीजे में पूरे क़बीले को ज़लील होकर मदीने से जाना पड़ा। बनू क़ुरैज़ा ने इन्तिहाई नाजुक वक़्त में ग़द्दारी की। उनकी साज़िश अगर खुदा न ख़्वास्ता कामयाब होती तो फिर मदीने में शायद वजूद बाक़ी न रहता। इसकी पादाश में पूरा क़बीला तहे तेग़ कर दिया गया। औरतों और बच्चों को छोड़ दिया गया। इस तरह मदीना मुनव्वरा की पाक ज़मीन यहूद के वजूद से हमेशा के लिये साफ़ हो गयी। उनके जो क़बाएल ख़ैबर पहुंचे तो वहां भी रसूलुल्लाह (स0अ0) को शहीद करने की साजिश की गयी और खाने में सरीउल असर ज़हर मिलाकर पेश किया गया। वहीये इलाही के ज़रिये आपको मालूम हुआ और आप सही सलामत रहे और उनकी ख़बासत का पर्दा चाक हुआ। आप (स0अ0) ने ख़ैबर के यहूद को वहां बरक़रार तो रखा लेकिन साथ में यह भी फ़रमाया कि जब तक हम चाहेंगे तुम्हें रखेंगे। फिर हज़रत उमर रज़ि0 ने अपने दौरे ख़िलाफ़त में ऐन मंशाए नबवी के मुताबिक़ उनको जज़ीरतुल अरब से ही निकाल कर बाहर किया। इस तरह यह मुबारक ज़मीन उनके नामुबारक वजूद से हमेशा के लिये पाक हो गयी।

मरीज़ की नमाज़

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

जब खड़े होने पर क़ादिर न हो: अगर नमाज़ पढ़ने वाले को कोई मर्ज़ लाहिक़ हो जिसकी वजह से उसको क़याम पर कुदरत न हो तो फ़र्ज़ व वित्र और सुन्नते फ़ज्र भी बैठकर पढ़ने की इजाज़त है। यह मर्ज़ ख़्वाह हक़ीक़त में मौजूद हो मसलन उसे ख़ौफ़ हो कि खड़े होकर नमाज़ पढ़ेंगे तो गिर पड़ेंगे या उसे ज़रर लाहिक़ होगा और ज़ुअफ़ और कमज़ोरी की वजह से खड़ा न रह सकेगा। या यह मर्ज़ हुक्मन मौजूद हो यानि उसे डर हो कि खड़े होकर नमाज़ पढ़ेंगे तो मर्ज़ बढ़ जायेगा या शिफ़ायाबी देर में होगी। या उसे सर चकराने या सख़्त तकलीफ़ में मुब्तिला होने का ख़ौफ़ हो। इन तमाम सूरतों में उसे बैठकर नमाज़ पढ़ने की इजाज़त है।

चुनान्चे बुख़ारी अबूदाउद वग़ैरह में हज़रत इमरान बिन हसीन रज़ि0 की रिवायत है कि फ़रमाते हैं कि मुझे बवासीर का मर्ज़ था, मैंने नबी करीम स0अ0 से नमाज़ के बारे में पूछा तो आप स0अ0 ने कहा कि खड़े होकर नमाज़ पढ़ो उसकी इस्तताअत न हो तो बैठ कर पढ़ो, उसकी इस्तताअत न हो तो पहलू के बल लेट कर पढ़ो।

क़याम पर क़ादिर हो सज्दा पर क़ादिर न हो: अगर किसी शख़्स को ऐसा मर्ज़ लाहिक़ है जिसकी वजह से वह सज्दा नहीं कर सकता है लेकिन क़याम कर सकता है तो ऐसे शख़्स से भी क़याम की फ़र्ज़ियत ख़त्म हो जाती है, उसके लिये अफ़ज़ल यही है कि बैठकर नमाज़ पढ़े और रुकूअ सज्दे के लिये इशारा करे। अगर खड़े–खड़े रुकूअ सुजूद के लिये इशारा करे तो नमाज़ हो जायेगी लेकिन खिलाफ़ ऊला होगा। इस तरह की सूरतेहाल हो तो कुर्सी पर बैठकर भी रुकूअ सुजूद की तरफ़ इशारा कर कसता है।

क़याम साक़ित करने वाले कुछ दूसरे ऐज़ार: अगर किसी को यह मर्ज़ हो कि खड़े होकर नमाज़ पढ़ने से पेशाब टपकने लगता है, बैठकर नमाज़ पढ़ने से ऐसा नहीं होता है तो वह बैठ कर नमाज़ पढ़े। इसी तरह खड़े होकर नमाज़ पढ़ने से ज़ख़्म से खून बहने लगता है तो वह भी बैठकर नमाज़ पढ़े। किसी की सांस फूलती है और क़याम करने पर मर्ज़ में इतना इज़ाफ़ा हो जाता है कि किराअत नहीं कर पाता, बैठकर नमाज़ पढ़ने से ऐसा नहीं होता तो वह बैठकर नमाज़ पढ़ेगा। इसी तरह अगर खड़े होने पर दुश्मन का ख़ौफ़ हो तो तब भी बैठकर नमाज़ पढ़ेगा।

अगर थोड़ी देर क़याम पर कुदरत हो: अगर किसी को ऐसा मर्ज़ लाहिक़ हो कि वह कुछ वक़्त के लिये खड़ा हो सकता है लेकिन आख़िर तक क़याम नहीं कर सकता तो उसको चाहिये कि जितनी देर खड़ा हो सकता है उतनी देर खड़ा रहे फिर बैठ जाये। ऐसा शख़्स शुरू ही से बैठ जाये तो अंदेशा यह है कि उसकी नमाज़ ही सही नहीं होगी।

और जो शख़्स सहारा लिये बिना खड़ा नहीं हो सकता लेकिन किसी दीवार लाठी या किसी शख़्स का खड़ा हो सकता है तो उससे क़याम साकित नही होगा, इस पर लाज़िम है कि सहारा लेकर खड़ा हो।

अगर किसी शख़्स की सूरते हाल यह है कि मस्जिद में जमाअत से नमाज़ पढ़ने के लिये जाये तो क़याम पर कुदरत नहीं रहती लेकिन घर में तन्हा नमाज़ पढ़े तो क़याम करके नमाज़ पढ़ कसता है तो उस शख़्स पर लाज़िम है कि घर ही में क़याम के साथ नमाज़ पढ़े।

बैठने की हैसियत: अगर किसी शख़्स को क़याम पर कुदरत नहीं है जिसकी वजह से बैठकर नमाज़ पढ़ता है तो बैठने का सबसे बेहतर तरीक़ा यह है कि जिस तरह तशहद के लिये बैठा जाता है, उस तरह बैठे लेकिन अगर उस तरह बैठने से तकलीफ़ होती है तो जिस तरह बैठ सकता है उस तरह बैठे। यहां तक कि चार जानू यानि पलथी मारकर भी बैठ सकता है।

चुनान्चे नसई में हज़रत आयशा रज़ि0 से मरवी है फ़रमाती है कि मैंने नबी करीम स0अ0 को चार ज़ानू नमाज़ पढ़ते हुए देखा।

रुकूअ सुजूद के लिये इशाराः बैठकर इशारे से रुकूअ सुजूद करने वाला रुकूअ सुजूद के लिये सर झुकायेगा और रुकूअ के मुक़ाबले में सज्दे में सर ज़्यादा झुकायेगा।

सज्दा करने के लिये ज़मीन पर कोई चीज़ रख देनाः अगर कोई शख़्स ज़मीन पर सज्दा करने पर क़ुदरत नहीं रखता, एक ईंट या दो ईंट के बराबर कोई चीज़ रख दी जाये तो उस पर सज्दा कर सकता है तो उस पर लाज़िम है कि उस तरह कोई चीज़ रखकर उस पर सज्दा करे। यह हक़ीक़ी सज्दा करने वाला माना जायेगा। इशारे से सज्दा करने वाला नहीं माना जायेगा। लेकिन सज्दा करने के लिये जो चीज़ रखी जाये उसे सख़्त और ठोस होना चाहिये जैसे दो ईंट की ऊंचाई वाली तिपाई या पत्थर वग़ैरह।

और अगर वह इतना सर नहीं झुका सकता, दो ईंट से ज़्यादा ऊंची चीज़ रखने की ज़रूरत पड़ रही है तो अब हुक्म यह है कि कोई चीज़ न रखी जाये। इशारे से नमाज़ पढ़ी जाये। इस हालत में सज्दा करने के लिये कोई चीज़ न रखी जाये, इसलिए कि हदीस में इससे मना किया गया है। चुनान्चे हज़रत जाबिर से मरवी है कि नबी करीम स0अ0 ने एक बीमार की अयादत की, आपने देखा कि वह एक तकिया पर नमाज़ पढ़ रहा है तो आपने तकिया फेंक दिया और फ़रमाया कि अगर क़ुदरत हो तो ज़मीन पर नमाज़ पढ़ो वरना इशारे से नमाज़ पढ़ो और सुजूद को रुकूअ से पस्त रखो।

फिर भी अगर कोई चीज़ रख दी गयी और उसके इस पर सज्दा किया तो उसकी नमाज़ सही हो जायेगी। बशर्ते कि सज्दे में रुकूअ के मुक़ाबले में ज़्यादा सर झुकाया हो। इस सूरत में यह हक़ीक़ी सज्दा नहीं माना जायेगा। इसको सज्दे का इशारा क़रार दिया जायेगा।

जब बैठने पर भी क़ादिर न होः अगर किसी का मर्ज़ इतना बढ़ गया है कि बैठने पर भी क़ादिर नहीं है या बैठ तो सकता है लेकिन डॉक्टर ने मना कर दिया है तो वह लेट कर नमाज़ पढ़ेगा। इस सूरत में वह दो तरीक़ों में से किसी को अख़्तियार कर सकता है। पहला अफ़्जल तरीक़ा यह है कि पैर क़िब्ला की तरफ़ कर के घुटने खड़े कर ले ताकि पैर क़िब्ला की तरफ़ करना लाज़िम न आये और सर को किसी तकिया वग़ैरह पर रखकर थोड़ा ऊंचा कर ले ताकि क़िब्ला की तरफ़ रुख़ हो जाये। फिर रुकूअ सुजूद के लिये गर्दन से इशारा करे।

दूसरा तरीक़ा यह है कि मरीज़ को करवट पर लिटाकर उसका चेहरा क़िब्ला की तरफ़ कर दिया जाये। इस सूरत में अफ़ज़ल दायां करवट है लेकिन बायें पर भी लिटाया जा कसता है।

इसलिये कि दारे क़ुतनी में हज़रत अली रज़ि0 से एक तवील हदीस मनक़ूल है जिसके आख़िर में आप स0अ0 का यह इशारा है, अगर मरीज़ बैठकर नमाज़ पढ़ सकता है तो अपनी दाहिनी करवट पर क़िब्लारुख होकर नमाज़ पढ़े और अगर दायें पहलू पर नमाज़ न पढ़ सकता हो तो चित्त लेटकर क़िब्ला की तरफ़ पैर करके नमाज़ पढ़ें। अहनाफ़ ने दूसरे दलाएल की वजह से क़िब्ला की तरफ़ पैर करने वाली हैयत को अफ़ज़ल क़रार दिया है।

जब बीमार सर से भी इशारा न कर सकेः अगर कोई शख़्स सर से भी इशारा नहीं कर सकता तो अब आंख वग़ैरह के इशारे से नमाज़ नहीं पढ़ेगा। फिर यह कैफ़ियत एक दिन एक रात यानि चौबिस घंटे से बढ़ जाये तो ख़्वाह बाद में सेहतयाब हो जाये तो मज़कूरा ज़माने की नमाज़े साक़ित हो जायेंगी और अगर चौबिस घंटे से कम यह कैफ़ियत रही और फिर सेहतयाब हो गया तो इस ज़माने की नमाज़े क़ज़ा करे या उनकी वसीयत करे। लेकिन अगर सेहतयाब नहीं हुआ तो यह नमाज़ें माफ़ हो जायेंगी।

जब मरीज़ क़िब्ला की तरफ़ रुख़ न कर सकेः अगर कोई शख़्स बीमारी की सबब क़िब्ले की तरफ़ रुख़ नहीं कर सकता ख्वाह घर में हो या अस्पताल में या जिस्म और कपड़े पर लगी गंदगी और नजासत साफ़ करना मुश्किल हो रहा है या सतर औरत पर क़ादिर नहीं है तो सिर्फ़ दो चीज़ों का ख़्याल रखते हुए नमाज़ पढ़ ले तो इस हालत में भी नमाज़ हो जायेगी। एक तो यह कि वुज़ू या तयम्मुम कर ले दूसरे यह कि नमाज़ों को उनके औक़ात में पढ़े। इन दो चीज़ों का ख़्याल रखकर नमाज़ पढ़े तो नमाज़ हो जायेगी। और बाद में दोहराने या फ़िदिया देने की भी ज़रूरत नहीं रहेगी।

बेहोश का हुक्मः अगर कोई शख़्स चौबिस घंटे से ज़्यादा बेहोश रहे या जुनून का शिकार हो जाये, यहां तक कि छः नमाज़ों का वक़्त गुज़र जाये तो बाद मेंउन नमाज़ों की क़ज़ा उस पर लाज़िम नहीं होगी। अगर यह कैफ़ियत उससे कम मुद्दत तक रहे और सिर्फ़ पांच नमाज़ों का वक़्त गुज़रने के बाद होश में आ जाये तो उसको उन नमाज़ों की क़ज़ा करनी होगी।

फिर यह हंगामा ऐ खुदा क्या है?

जनाब डॉक्टर जावेद हुसैन

आज हम एक ऐसे दौर से गुज़र रहे हैं जिसकी कोई इन्तिहा दिखाई नहीं देती। हिन्दुस्तान में ही नहीं पूरी दुनिया में जो माहौल पैदा हो गया है, जो एजेन्डा बनाया गया है, यह न केवल भारतीय मुसलमानों को बर्बाद कर देगा बल्कि पूरी दुनिया के मुसलमानों पर सितम ढाएगा। आज हमारी सोच केवल इस हद तक काम करती है कि जब हम पर मुसीबत आएगी तब देखा जाएगा। हमारे यहां सामूहिक व्यवस्था अब समाप्ति की कगार पर है। पूरी दुनिया में एक–दूसरे को दीनी भाई कहने वाले अब कहां हैं।

दुनिया में जितने मुस्लिम राष्ट्र हैं, उन्हें मुसलमानों की कोई चिन्ता नहीं। हर हाकिम अपनेआप में मस्त है। अपने आप को दीनी भाई कहने वाले दीन से दूर हो रहे हैं तो फिर दूसरों से क्या शिकायत की जाए। शासन को क़ौमी नज़रिया अपनाना चाहिये, न कि मज़हबी लेकिन आज यहां गंगा उल्टी बह रही है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है जहां की सभ्यता को गंगा–जमुनी कहा जाता है, लेकिन जो रंग आज क़ौमी धारे को दिया जा रहा है वह इसके बिल्कुल विपरीत है। अगर यह काम ऐसे ही चलता रहा तो हर आने वाली सरकार अपने दौर में अपना ही मज़हबी नज़रिया लेकर उतरेगी। फिर सोचिये, जनता का क्या होगा। जनता में एकता के बजाय बिखराव फैलना शुरू हो जाएगा।

हम सोचते थे कि शायद अब हालात बदलेंगे। ठोस काम होंगे। हालात तो बदले लेकिन जो बदलाव आया वह सभी देशवासियों के सामने है और यह बदलाव राहत के बजाय तकलीफ़ का कारण बनता जा रहा है। राष्ट्रहित कहीं दिखाई नहीं देता है। लोगों पर अपनी मर्ज़ी और अपना नज़रिया थोपने की कोशिश की जा रही है। यह बात फैल रही है कि भारत में ''वन्दे मातरम'' अनिवार्य किया जायेगा लेकिन सरकार जिसका कोई धर्म नहीं होता, एक धार्मिक गीत को कैसे अनिवार्य कर सकती है और वह भी ऐसे देश में जहां एक नहीं कई धर्मों के लोग अपने–अपने नज़रियों पर क़ायम हैं। हालांकि किसी एक के मज़हबी नज़रिये को किसी दूसरे या सभी लोगों पर थोप देना संविधान के अनुसार भी ग़लत है। संविधान के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है।

सरकार को किसी धार्मिक गीत के बजाय राष्ट्रगीत को अपने समारोहों में शामिल करना चाहिये। हमारे पास तो दुनिया का सबसे बेहतरीन राष्ट्रगीत ''सारे जहां से अच्छा, हिन्दुस्तां हमारा'' जो डॉक्टर सर मुहम्मद इक़बाल ने लिखा था, मौजूद है। लेकिन सरकार जिस गीत के लिये ज़ोर दे रही है वह एक धार्मिक गीत है। हम एक ओर तो यह कहते हैं कि हमें सभी को साथ लेकर चलना है लेकिन कार्यवाही हम विपरीत दिशा में कर रहे हैं। यदि सरकार का यही हाल रहा तो देश में नफ़रत कम होने के बजाय बढ़ेगी। आप जानते हैं कि जब किसी चीज़ को ज़्यादा ताक़त से दबाया जाये तो और वह और ज़ोर के साथ उभरती है। यही कारण है कि लोगों में इन्तिशार कम होने के बजाय बढ़ रहा है। अगर देखा जाये तो 'वन्दे मातरम' कई बरसों से कई समारोहों में गाया जाता रहा है। एतराज़ करने वाले नहीं के बराबर थे लेकिन चूंकि अब बाक़ायदा इसका अभियान चलाया जा रहा है, इसलिए बेचैनी बढ़ रही है।

अब तो ऐसा लगता है कि जैसे धर्म घर–घर और धर्मस्थलों से निकल कर सड़कों पर आ रहा है। धर्म के नाम पर दंगे–फ़साद हो रहे हैं। इसलिए अब यह

एहसास होने लगा है कि क्या भारत में मुसलमान व दूसरी क़ौमों का जीना नाक़ाबिले बर्दाश्त होता जा रहा है। क्या ऐसे हालात पैदा किये जा रहे हैं कि मुसलमानों का भारत में रहना मुश्किल हो जाये।

हम तो सोचते हैं, अब हिन्दुस्तान में मुसलमानों के लिये बड़ा बुरा दौर शुरू हो गया। आये दिन कुछ ऐसे वीडियोज़ वाट्सऐप के द्वारा फैलाये जाते हैं जिससे मुसलमानों का सुकून तो दूर ही हो रहा है, इन्तिशार भी फैल रहा है। मुसलमान इसे एक सियासी हरबा समझने के बजाय इसे ख़ूब हवा दे रहे हैं और नतीजा यह हो रहा है कि हमारी ही क़ौम में बदहवासी और बेचैनी फैल रही है। इस तरह यह काम जो और लोग हमारे साथ करना चाहते हैं, हम ख़ुद ही कर रहे हैं। ख़ुद ही उनके लिये आसानियां पैदाकर रहे हैं।

हमारे संविधान में भी धर्म को आज़ादी के साथ–साथ राजनीति से दूर रखा गया है लेकिन यह भारतवासियों की बदक़िस्मती है कि पूरे भारत में यदि राजनीति में किसी चीज़ को वरीयता दी गयी तो वह है धर्म। यदि यह वरीयता अच्छे कार्यों को दी गयी होती तो हम भी नाज़ करते लेकिन यहां तो हर बिगाड़ के लिये धर्म का इस्तेमाल किया जाता हैं। दंगे करवाने हों तो धर्म, इलेक्शन हो तो धर्म की दख़लन्दाज़ी, किसी को मारना हो तो धार्मिक मामला, और यही धार्मिक नज़रिया होने की वजह से अपने देश में आजकल हम आज़ादी से सांस भी नहीं ले पा रहे हैं। हर जगह किसी न किसी बात का खटका लगा रहता है। जिसके हाथ में लाठी आ जाती है वही भैंस हांकने लगता है। इसी सोच ने हम हिन्दुस्तानियों के बीच नफ़रत का बीज बो दिया है और इसमें आम आदमी ही नहीं हर वर्ग और हर समाज के लोग शामिल हैं। पढ़े–लिखे भी हैं और जाहिल भी। सरकार चलाने वाले भी हैं और शिक्षण संस्थान चलाने वाले भी। यही कारण है कि अधिकतर हमारी व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो जाता है।

कहते हैं कि जब न्याय डगमगाने लगे तो हर चीज़ में उसका असर दिखाई देता है। यह बात भी हमारे भारत में किसी से ढकी–छिपी नहीं है। यहां धार्मिक नज़रिया ज़ोर पकड़ रहा है मगर केवल एक ही क़ौम के लिये और वह भी उस क़ौम के लिये जिसने देश की आज़ादी के लिये अपने लाखों उलमा और जाबांज़ क़ुर्बान किये। हालांकि यह वह आज़ादी थी जिसकी शुरूआत ही मुसलमानों से हुई थी और आज उन्हीं मुसलमानों से उनके देशप्रेम का सर्टिफ़िकेट मांगा जा रहा है। उन्हें शक की निगाह से देखा जा रहा है। आतकंवादी के नाम से परेशान किया जाता है। ग़लत मुक़द्दमे चलाये जाते हैं जिनका सुबूत कई बेक़ुसूर मुसलमानों का अदालत से बाइज़्ज़त बरी होना है।

हम तो कहते हैं क़ुसूरवारों को ज़रूर सज़ा हो, लेकिन यहां तो बेक़ुसूरों को ही कई–कई बरसों तक जेलों में बन्द रखा जाता है और जब वे बरी किये जाते हैं तब तक उनकी आधी ज़िन्दगी ख़त्म हो चुकी होती है। अब यह पक्षपात नहीं तो और क्या है? अस्ल मुलज़िम कभी पकड़े ही नहीं जाते और बेक़ुसूर को बख़्शा नहीं जाता। यही कारण है जिनसे अफ़रातफ़री फैलती है। क्योंकि क़ुदरत का क़ानून है कि जब किसी चीज़ को ज़्यादा दबाया जाता है तो वह और तेज़ी से उभरती है। फिर उसका इल्ज़ाम भी मुसलमानों पर लगाया जाता है। हालांकि इस अफ़रातफ़री के ज़िम्मेदार और लोग हैं।

मुसलमान सदियों से भारत में रह रहे हैं। इस देश की ख़ुशहाली में उन्होंने अहम रोल अदा किया है जिसका सुबूत यह है कि शाहजहां के समय में भारत की जी डी पी दुनिया की जी डी पी का पच्चीस प्रतिशत थी। दुश्मनों ने हिन्दुस्तान को ग़ुलामी की ज़ंजीर पहनायी तो उसे काट फेंकने में मुसलमानों ने न जान की परवाह की। लेकिन आज सूरतेहाल यह है कि टीपू सुल्तान जैसे देशप्रेमी की छवि बसह का मुद्दा बनी हुई है। ताजमहल के बारे में नई–नई बातें सामने आ रही है।

हम जाहिल और नादान लोगों के बारे में तो समझ सकते हैं लेकिन यहां तो पढ़े–लिखे और स्कॉलर लोग ऐसे–ऐसे बयान देते हैं कि अक़्ल हैरान हो जाती है। इतिहास बदल देते हैं यह लोग। किस तरह कुछ पढ़े–लिखे लोगों ने शेर–ए–मैसूर टीपू सुल्तान के बारे में क्या–क्या कहा। संक्षेप में लिखूं तो वह सुल्तान

जिसने 156 मन्दिरों को ज़मीन व ज़ेवरात दिये, आज की रॉकेट टेक्नालाजी उन्हीं की देन है, लेकिन दुख की बात यह है कि यही लोग कभी टीपू सुल्तान को हिन्दुस्तान की आज़ादी का हीरो मानते थे। यह सच्चाई भी है कि अपनों की ग़द्दारी की वजह से टीपू सुल्तान को अंग्रेज़ शहीद कर पाये और उसी दिन से अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान में पैर जमाने शुरू किये।

बेगम हज़रत महल और बहादुर शाह ज़फ़र से लेकर न जाने कितने लोगों ने हमारी आज़ादी की बुनियाद रखी लेकिन आज की साम्प्रदायिक ताक़तें आने वाली नस्लों की सोच को बदलने का काम कर रही हैं। यदि ताजमहल का मामला देखा जाये तो क्या यह सिर्फ़ और सिर्फ़ भेदभाव वाली बात नहीं है?अब आप सोचिये हमारी क़ौमियत कहां गयी है?मुसलमान ही क्यों दोषी लगता है?मुसलमान ही को क्यों अपमान और अकेलापन बर्दाश्त करना पड़ता है?

अरे भाई, आज जो लोग स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर मदरसों में तिरंगा लगाकर देशप्रेम दिखाने की नसीहत देते हैं, वे शायद नहीं जानते हैं कि तिरंगा जो हमारे लिये बहुत ही प्रिय है, एक मुसलमान औरत सुरैया तैयब जी ने बनाया था। भारत की जितनी ऐतिहासिक इमारते हैं अधिकतर मुसलमान बादशाहों की बनायी हुई हैं। अब यदि मुसलमानों की क़ौमियत पर सवाल उठता है? मुसलमान बादशाहों पर आरोप लगते हैं तो गिरा दीजिए वे इमारतें और वे इमारतें भी जिन्हें अंग्रेज़ों ने बनवाया तो पता चलेगा कि देश ने क्या खोया और क्या पाया?अतीत में किसी राजा ने धर्म के लिये लड़ाई नहीं लड़ी। सभी शासकों ने केवल सत्ता के लिये और अपने क्षेत्र को बढ़ाने के लिये लड़ाइयां लड़ीं। बादशाहों और राजाओं ने यदि जंगें धर्म के लिये लड़ी होती तो हिन्दु राजाओं के सेनापति मुसलमान और मुसलमान बादशाहों के सेनापति हिन्दु नहीं होते। लेकिन आज नई नस्ल के ज़हन में यह ज़हर घोला जा रहा है कि उनका सबसे बड़ा दुश्मन मुसलमान है।

हमने कई वीडियो देखे कि मुसलमानों के ख़िलाफ़ अलग–अलग तरह से ज़हर घोला जा रहा है। देशवासियों के दिमाग़ में यह बात बिठाई जाती है कि भारत की सबसे ख़तरनाक क़ौम मुसलमान हैं। हम औरत को दुनिया की सबसे मासूम चीज़ समझते हैं। औरत की इज़्ज़त करते हैं लेकिन आज हम ऐसी–ऐसी औरतों के वीडियो देख और सुन रहे हैं जिनमें वे मुसलमानों को नाम लेकर गन्दी–गन्दी गालियां बक रही हैं। ऐसे–ऐसे शब्दों का प्रयोग करती हैं कि उन्हें दोहराया भी नहीं जा सकता है। हमें तो ऐसे वीडियो देखने और सुनने के बाद बड़ा दुख भी होता है। क्योंकि पता नहीं, क्यों हमारे मुस्लिम भाई उन वीडियो को बजाय डिलीट करने के आगे–आगे फ़ारवर्ड कर देते हैं। वे बिल्कुल नहीं सोचते कि इसका हमारे क़ौम पर कितना असर पड़ता है। अगर आप सोचें तो समझ में आयेगा कि यह सभी वीडियोज़ ख़ुद उनके बनाये हुए हैं। कोई सख़्त से सख़्त दिल आदमी भी ऐसे हादसे देखकर पहले मदद के लिये भागेगा, मुसीबतज़दा लोगों की मदद करेगा, न कि वीडियो बनायेगा। आप वीडियो देखते वक़्त ग़ौर से उसकी स्पीड देखिये, तरीक़ा देखिये तो साफ़ महसूस होता है कि नक़ली बनाया गया है और यह सब तास्सुब को बढ़ावा देने के लिये किया गया है। इस बात को फैलाने के लिये कि देखो! हम मुसलमानों के ख़िलाफ़ हैं। यह सब उकसाने वाली बातें हैं।

बात कहते और लिखते भी दुख होता है कि राजनीति में केवल मुसलमानों के कंधे पर ही बन्दूक़ रखकर क्यों चलायी जाती है। मुसलमान बादशाहों को, मुसलमान क़ौम को ही क्यों निशाना बनाया जाता है?कभी सुब्रमन्यम स्वामी कुछ कहते हैं तो कभी तोगड़िया शब्दों के तीर चलाते हैं। हालांकि 1947 ईसवी से पहले भारत में कभी भी हिन्दु–मुस्लिम राजा और बादशाहों में धर्म के लिये लड़ाई नहीं हुई। इतिहास गवाह है कि जो लड़ाइयां 1947 से पहले लड़ी गयीं, केवल राजपाठ के लिये लड़ी गईं। और दूसरी बात यह भी देखिये, जो बड़े–बड़े लीडर मुसलमानों के खिलाफ़ आज बड़ी–बड़ी बहस कर रहे हैं, उनकी अपनी बेटियां, भांजियां, भतीजियां और बहनें मुसलमानों से ब्याही गयी हैं। आज शायद जो क़ौमी धारे की बात करते हैं, वे भूल जाते हैं

कि बात तो वे क़ौमी धारे ही की करते हैं, लेकिन अमल मज़हबी धारे पर करते हैं।

अगर इन्सान का ज़ाहिर और बातिन एक हो जाये तो यह सारे मामले ही ख़त्म हो जाएं, लेकिन यहां तो सुलह सफ़ाई करने के बजाय और बढ़ावा दिया जाता है और उसका असर किसी ख़ास आदमी पर नहीं पड़ता। केवल निर्दोष जनता पर उसका असर पड़ता है। जिसका नतीजा हम आजतक 1947 से देखते आ रहे हैं। इसलिए अगर कोई खून कर दे तो उसका असर कहीं दिखाई नहीं देता लेकिन मज़हब के नाम पर अगर तिनका भी उछाला जाये तो वह शोला बन जाता है। इसी इन्सानी कमज़ोरी का आज की राजनीति में ख़ूब इस्तेमाल किया जा रहा है। सियासत में मज़हब का दखल न होने के बावजूद मज़हबी रिवायात पर चुनाव लड़ा जाता है। सियासत दां जानते हैं कि लोगों को वरग़लाया और उकसाया सिर्फ़ और सिर्फ़ धर्म के नाम पर जा सकता है। क़ौमी धारा तो बस नाम की बात है। मुसलमानों को क़ौमी धारे का सबक़ देने वाले खुद मज़हबी धारे के ग़ुलाम हैं। यह लोग याद रखें , इतिहास बदलना इतना आसान नहीं है जितना वे सोचते हैं। मैं गर्व से कहता हूं कि भारत का हर मुसलमान क़ौमी धारे से बंधा है। वह मज़हब का परस्तार ज़रूर है मगर दूसरे मज़हबों का दुश्मन नहीं है। वे लोग जो अब मुसलमानों पर नुक्ताचीनी कर रहे हैं, पहले खुद अपने आस–पास देखें, अपने क़दमों में देखें, आज़ादी की जंग से लेकर प्रकृतिक आपदाओं के समय आने वाले हालात का जायज़ा लें तो पता चलेगा कि हर जगह मुसलमान ही छाया हुआ है।

आज़ादी के लिये जिन लाखों उलमा ने अपनी जान क़ुर्बान की, वे मुसलमान ही थे। आज किसी भी आफ़त के समय जो सबसे पहले मदद के लिये दौड़ता है, वह मुसलमान ही होता है और अगर अल्लाह ने चाहा तो यह सिलसिला क़यामत तक चलता रहेगा। फ़िक्र न करें, यह हिन्दुस्तान मुसलमानों का है और मुसलमान मर कर यहीं दफ़न होता है। इसी धरती में समा जाता है और देश प्रेम की इससे बड़ी मिसाल कोई पेश नहीं कर सकता है!

शेषः एकेश्वरवाद क्या है?

इबादत में दूसरी अहम चीज़ यह है कि हर काम अल्लाह की रज़ा के लिये किया जाये। दोनों बातें ज़रूरी हैं। हुस्ने नियत भी ज़रूरी है और हुस्ने अमल भी ज़रूरी है। अगर उनमें से एक चीज़ में भी कमी है तो नुक़्स है। और दोनों मुकम्मल होंगे तब इबादत है।

मज़कूरा हदीस में आप (स0अ0) ने फ़रमाया कि एक अल्लाह की बन्दगी करें। उसमें सारी चीज़ें आ गयीं। अकाएद भी आगये, इबादात भी आगयीं, मुआमलात व मुआशरत की चीज़ें भी आ गयीं, उसके साथ आप (स0अ0) ने आगे मज़ीद ताकीद के तौर पर यह भी फ़रमा दिया कि "यानि अल्लाह के साथ ज़रा भी शिर्क न हो" मैं समझता हूं कि यहां शिर्क की दो क़िस्में मुराद हैं। असलन तो शिर्के जली जिसको कहते हैं वह मुराद है कि अल्लाह की बन्दगी में किसी दूसरे को शरीक न किया जाये, किसी के सामने हाथ फैलाना, किसी से दुआ मांगना, किसी से इल्तिजा करना, किसी के सामने उमूरे बन्दगी अंजाम देना, इबादत के काम अंजाम देना, सज्दा करना, जैसे नमाज़ में आदमी खड़ा होता है वैसे खड़ा होना, किसी के लिये नज़र व नियाज़ गुज़ारना, यह सारी चीज़ें शिर्क में शामिल हैं, इसी तरह से आदमी जो ख़ैर के काम कर रहा है, जो ईमान वाला तौहीद को मानने वाला ख़ैर के काम कर रहा है, उसको चाहिये कि यह काम अल्लाह की रज़ा की ही नियत से करे। अगर वह दूसरे की रज़ा की नियत से कर रहा है, दूसरों को ख़ुश करने के लिये वह काम कर रहा है तो यह भी शिर्क है, लेकिन ज़ाहिर है कि यह शिर्के जली नहीं है बल्कि वह शिर्के ख़फ़ी है। जो शिर्के जली है वह हरगिज़ भी माफ़ नहीं होता, और ऐसे शख़्स का कोई भी काम अल्लाह के यहां क़ुबूल नहीं, जब तक कि आदमी तायब न हो जाये और ईमान वाला न हो जाये, जब ईमान वाला हो जायेगा तब वह शिर्क माफ़ होगा और यह शिर्क ख़फ़ी ऐसा है कि अगर अल्लाह चाहे तो माफ़ कर दे और अमल क़ुबूल फ़रमा ले, लेकिन अल्लाह का निज़ाम बज़ाहिर यही है कि जब अल्लाह के लिये अमल होता है तो अल्लाह क़ुबूल फ़रमाता है, और जब अल्लाह के लिये नहीं होता तो अल्लाह को ग़ैरत नहीं आती।

अनिवार्य बनाम स्वैच्छिक देशभक्ति

जनाब रामचन्द्र गुहा

पन्द्रह अगस्त 1947 ईसवी को भारत स्वतन्त्र हुआ। इसके दो हफ़्ते बाद उघोगपति जेआरडी टाटा ने देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को नये देश के राष्ट्रगान के बारे में एक पत्र लिखा। उस वक़्त यह स्पष्ट नहीं था कि राष्ट्रगान कौन सा गीत होगा, बंकिम का 'वंदे मातरम' और टैगोर का 'जन गण मन' इस दौड़ में सबसे आगे था, लेकिन इसके अलावा इक़बाल के सारे जहां से अच्छा की भी बात हो रही थी।

जेआरडी थोड़े समय पहले ही लंदन से लौटे थे और वहां फ़िल्मे दिखाये जाने के बाद ब्रिटेन का राष्ट्रगान बजाया जाता था। उस देश ने थोड़े समय पहले ही हिटलर और नाज़ियों के ख़िलाफ़ ख़ूनी और बर्बर युद्ध में हिस्सा लिया था। हालांकि टाटा ने महसूस किया कि लोग उन पर देशभक्ति थोपे जाने से व्याकुल थे। उन्होंने महसूस किया कि स्वतन्त्र भारत को इस मामले में ब्रिटेन का अनुकरण नहीं करना चाहिये। 29 अगस्त 1947 ईसवी को उन्होंने नेहरू को लिखा, 'व्यक्तिगत रूप से मैं इसके एकदम ख़िलाफ़ हूं क्योंकि मैं महसूस करता हूं कि इसने राष्ट्रगान को सस्ता बना दिया है, अन्यथा होना तो यह चाहिये कि जब इसे बजाया जाये तो यह जिन चीज़ों को प्रतिनिधित्व करता है उनके प्रति गहरा सम्मान उमड़े। यह तभी सुनिश्चित होगा जब इसे विशेष और महत्वपूर्ण अवसरों पर ही बजाया जाए, न कि दिन में तीन बार, जैसा कि सिनेमाघरों में फ़िल्म ख़त्म होने पर बजाया जाता है। और उस समय लोग बाहर निकलने की हड़बड़ी में होते हैं और इसके प्रति लापरवाही के साथ सम्मान जताते हैं।'

टाटा ने अपने पत्र का समापन प्रधानमंत्री से यह आग्रह करते हुए किया कि 'जल्द ही इस विषय में राष्ट्रीय दिशा निर्देश जारी किये जायें ताकि यह निर्विवादित कार्य सिर्फ़ आदत न बन जाये।' जनवरी 1950 को 'जन गण मन' को राष्ट्रगान घोषित कर दिया गया। जे आर डी टाटा के सुझाव पर अमल किया गया कि इसे फ़िल्म के प्रदर्शन या किसी सामान्य या साधारण अवसरों पर नहीं बजाया जायेगा। इसके बजाय इसे स्वतन्त्रता दिवस और गणतन्त्र दिवस तथा स्कूलों और कालिजों के वार्षिक समारोह जैसे विशेष और औपचारिक अवसरों पर ही बजाया जायेगा।

देश के इतिहास की महत्वपूर्ण तिथियों से जोड़कर राष्ट्रगान के प्रति समुचित सम्मान व्यक्त किया गया। 1950 के दशक में सिनेमाघरों में इसे नहीं बजाया गया। हालांकि 1960 के दशक में थोड़े समय के लिये सिनेमा घरों में इसे बजाया गया। चीन और पाकिस्तान दोनों ने भारत के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दिया था, जिससे राष्ट्रीय भावनाएं उफ़ान पर थीं। लेकिन जैसे ही भावनाओं का ज्वार थमा, यह प्रक्रिया समझदारी के साथ रोक दी गयी। और विशेष अवसरों पर ही राष्ट्रगान बजाया जाने लगा। इत्तिफ़ाक़ से ब्रिटेन ने भी 1940 के दशक के आख़िर में सिनेमाघरों में गाड सेव द किंग/क्वीन बजाने पर रोक लगा दी और उसके बाद फिर कभी यह रोक नहीं हटायी गयी।

1970, 1980 और 1990 के दशकों और 21वीं सदी के पहले डेढ़ दशक तक राष्ट्रगान को सस्ता बनाने के प्रयास नहीं किये गये। इसके बजाय इसे हमारे लोकतान्त्रिक जीवन के ख़ास मौक़ों पर ही बजाया जाता रहा है। जिससे जैसा कि टाटा ने उम्मीद जताई थी राष्ट्रगान ने उन चीज़ों के प्रति गहरी देशभक्ति को ऊंचा उठाया, जिनका यह प्रतिनिधित्व करता है। राष्ट्रभक्ति के प्रदर्शन के इस शालीन व गंभीर तरीक़े को पिछले वर्ष तब कमतर कर दिया गया जब सर्वोच्च अदालत द्वारा दिशा निर्देश जारी करने के बाद सरकार ने फ़िल्मों के प्रदर्शन से पहले राष्ट्रगान को अनिवार्य कर दिया। सिनेमाघरों से राष्ट्रगान को अनिवार्य करने के एक साल हो रहे हैं। आदेश पर अमल के शुरूआती हफ़्तों में ऐसी भी रिपोर्ट आयी जब बुज़ुर्गों और विदेशियों को राष्ट्रगान बजाय जाते समय खड़े नहीं होने पर पीटा गया। भारत–पाकिस्तान के आख़िरी युद्ध को काफ़ी वर्ष हो चुके हैं, ऐसे में सवाल उठता है कि राष्ट्रभक्ति की भावनाओं को जगाये रखने के लिये इस प्रक्रिया की ज़रूरत क्या है।

.......(शेष पेज 6 पर)

इख़्लास का जज़्बा

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

हदीसः हज़रत अबू उमामा रज़ि0 से मरवी है कि नबी अकरम स0अ0 ने इरशाद फ़रमाया अल्लाह तआला उसी अमल को कुबूल करता है जो सिर्फ़ उसी के लिये किया गया है और सिर्फ़ उसी की रज़ा गोई मद्‌देनज़र हो।

फ़ायदाः इख़्लास अमल की रूह है। इख़्लास के बिना कोई भी अमल एक तने बेजान से ज़्यादा नहीं है। इसीलिए दीने इस्लाम में इख़्लास पर ख़ास तौर से तवज्जे दी गयी है और तमाम आमाल की कुबूलियत का दारोमदार नियतों की इस्लाह पर बताया गया है। यह मज़हबे इस्लाम का इम्तियाज़ है कि उसकी तमामतर तालीमात का ख़्वाह अक़ाएद व इबादात का मसला हो या मामलात का। ग़रज तमाम आमाल में इस्लाम की नज़र उसी एक शफ़फ़ाफ़ आइने पर रहती है। अगर इन्सान का क़ल्ब दुरूस्त है तो तमाम आमाल ठीक हैं और अगर दिल फ़ासिद है तो तमाम आमाल बेकार है। बहुत सीरिवायतों में यह वज़ाहत की गयी है कि इन्सानी ज़िन्दगी में इस्लाहे क़ल्ब का कलीदी किरदार है और कुरआन मजीद में भी बहुत से मौक़ो पर यह सराहत मौजूद है कि अल्लाह तआला को अपने बन्दों से ख़ालिस बन्दगी मतलूब है। एक जगह इरशाद है, अच्छी तरह सुन लो, ख़ालिस बन्दगी अल्लाह ही के लिये है।

दुनिया का भी यही उसूल है कि हर इन्सान ख़ालिस चीज़ पसंद करता है। और आख़िरत का भी यही क़ानून है कि वहां ख़ासिल अमल मक़बूल ही होता है। इसीलिए जिस शख़्स की बन्दगी और इताअत इख़्लास से ताबीर हो वही शख़्स आख़िरत में कामयाब है। और अगर किसी की ज़िन्दगी गरचे ज़ाहिरी तौर पर बन्दगी व इताअत का पैकर हो लेकिन इख़्लास से ख़ाली हो तो ऐसा शख़्स उख़रवी एतबार से बड़े घाटे में है। एक रिवायत में आता है कि आप स0अ0 ने सहाबा से पूछा कि मुफ़लिस कौन है?सहाबा रज़ि0 ने जवाब दिया जिसके पास दीनार व दिरहम हो वह मुफ़लिस है। आप स0अ0 ने इरशाद किया कि अस्ली मुफ़लिस वह है जिसके पास इबादात और ख़ैर के कामों का ज़ख़ीरा हो लेकिन उसके इन तमाम आमाल की बुनियाद रियाकारी पर हो। मालूम हुआ अजब, बेजा फ़ख़्र और रियाकारी इन्सान के आमाल को घुन की तरह चाट जाती है। इससे हर इन्सान को बहुत दूर रहने की कोशिश करनी चाहिये और अपने तमाम आमाल में इख़्लास का जौहर पैदा करना चाहिये। जो कि कुबूलियते आमाल की सनद है।

इख़्लास की बरकत और उसका फ़ायदा यह है कि इन्सान दुनिया व आख़िरत दोनों में सुर्ख़रू होता है। अगर कोई शख़्स इख़्लास का दामन न छोड़े तो डूबते–डूबते भी किनारा पा जाता है। लेकिन बसूरते दीगर इस बात का बहुत इमकान रहता है कि किनारे पर आते आते डूब जाये। इख़्लास का एक बड़ा फ़ायदा यह भी है कि इन्सान दुनिया से इस हाल में रुख़्सत होता है कि अल्लाह तआला उससे राज़ी होता है।

मौजूदा दौर में इख़लस का फुक़दान आम बात है। इस वक़्त ज़िन्दगी के हर शोबे में उस जौहर की बहुत सख़्त कमी महसूस की जा रही है। आज उमूमी सूरते हाल यह है कि अगर कोई मुअल्लिम है तो वह अपनी तालीम में, अगर कोई वाइज़ है तो वह अपने वाज़ में, अगर कोई रिफ़ाही उमूर का सरबरार है तो वह अपने रिफ़ाही उमूर में, और अगर कोईताजिर है तो अपनी तिजारत में जज़्बे अख़लाक़ से आरी है। और यही वजह है कि दीनी ख़िदमात उरूज पर हैं, रिफ़ाही उमूर में कोई कोताही नहीं है और वाज़ व तज़कीर का भी एक सिलसिला है लेकिन उसके बावजूद मुआशर में इसके ख़ातिरख़्वाह नताएज रौनुमा नहीं हो रहे हैं। जबकि तारीख़ के सफ़हात में कुरूने अव्वल की मिसाल ज़र्री हुरूफ़ से रक़म है कि अफ़राद और वसाएल की क़िल्लत के बावजूद चमनिस्ताने आलम में वह बहार आयी जिसकी नज़ीर आजतक दुनिया पेश न कर सकी। ग़ौर किया जाये तो इस ग़ैर मामूली बर्क़रफ़तार तरक़्क़ी का बुनियादी राज़ इख़्लास था जिसने दुनिया को हैरतअंगेज़ नमूनो का मुशाहिदा कराया और यही एक हक़ीक़त है कि जब इख़्लास का जौहर अनक़ा होता है तो आमाल बेवकअत हो जाते हैं और सारी मेहनते रायगा जाती हैं। इसीलिए इस दौर में हर सतह पर जज़्बा–ए–इख़्लास पैदा करने की ज़रूरत है ताकि अच्छे कामों के समरआवर नताजय सामने आयें और वह काम दुनिया व आख़िरत में फ़ौज़ो व फ़लाह का ज़रिया बनें।

वर्तमान परिस्थितियाँ और मुसलमान

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

1857 की क्रान्ति के बाद हिन्दुस्तान में हिन्दु–मुस्लिम एकता का एक श्रेष्ठ उदाहरण सीपित हुआ। अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ पूरा मुल्क एक प्लेटफ़ार्म पर खड़ा हुआ और धर्म, ज़ात व बिरादरी, हर तरह के भेदभाव को भुला करके आज़ादी के लिये प्रयासरत हुआ। जिसके नतीजे में इस मुल्क को अंग्रेज़ों के शिकंजे से रिहाई हासिल हुई। लेकिन यह भी ऐतिहासिक वास्तविकता है कि जहां देश में आपसी एकता तथा आपसी सहयोग का वातावरण साज़गार हो रहा था वहीं इस वातावरण में कुछ अराजकतत्व भी घुल रहे थे, जो आज़ादी के हर महाज़ पर आज़ादी के संघर्ष करने वालों लिये रुकावटें खड़ी कर हरे थे। वे अंग्रेज़ों के पुश्तपनाह और उनके सहयोगी थे। यद्यपि उनकी कोशिशें कामयाब न हो सकीं और यह देश आज़ाद हो गया। आज़ादी के बाद इस मुल्क को बंटवारे के गंभीर अनुभव का सामना करना पड़ा जिसका सीधा लाभ अराजकतत्वों की टोली को प्राप्त हुआ और देश व धर्म के नाम पर वे पूरी तरह सरगर्म हो गयी। सत्ता तक पहुंचने के लिये उसने हर तरह की मानवता रहित हरकत को जायज़ ठहराया और "लड़ाओ और हुकूमत करो" की अंग्रेज़ों की पॉलिसी को अमली तौर पर अपनाया। उन्होंने मुसलमानों के ख़िलाफ़ पक्षपात व नफ़रत की सियासत शुरू की जिसके नतीजे में इस मुल्क में संगीन फ़सादात हुए। अत्यधिक जानी व माली नुक़सान हुआ। हालिया गुजरात दंगे में तो हैवानियत की सारी हदें ही पार कर दीं। दलीलें और तथ्य गवाह हैं कि यह सारे दंगे बहुत ही व्यवस्थित और सरकारी पुश्तपनाही में ही हुए। जो निसंदेह भारत के माथे पर बदनुमा दाग़ हैं। फिर भी यह फ़साद वक़्ती थे और मुल्क के ख़ास–ख़ास इलाक़ों में हुए थे इसलिए जल्द ही मुस्लिम क़ौम इन सदमों से बाहर निकल आयी।

लेकिन देश की मौजूदा सूरते हाल पहले के मुकाबले मे ज़्यादा संगीन और चिन्तनीय हो चुकी है। इस समय साम्प्रदायिकता, कट्टरता और नफ़रत की राजनीति को धर्म के नाम पर न केवल बढ़ावा दिया जा रहा है बल्कि उसे लोगों के स्वभाव में भी दाख़िल किया जा रहा है। जिसके लिये कट्टरवादी संस्थाएं पूरी आज़ादी के साथ सरगर्म हैं। ऐसे में मुल्क का कोई क्षेत्र और कोई वर्ग सुरक्षित नहीं है। अल्पसंख्यक वर्ग परेशान और मुस्लिम क़ौम बहुत ही गंभीर रूप से चिन्ता में पड़ी है और अपने भविष्य को लेकर बेचैन है। निसंदेह हालात से घबराना और खौफ़ व डर की कैफ़ियत में मुब्तिला होना स्वभाविक है लेकिन किसी भी सूरत में मायूस होना और ठोस कार्यप्रणाली से ग़फ़लत बरतना ईमान वालों के लिये शोभनीय नहीं।

हालात का विश्लेषण बतलाता है कि इस गंभीर परिस्थिति के विभिन्न कारणों में से एक बुनियादी कारण मुसलमानों की स्वयं की ग़लती है। मुसलमानों ने अपने महत्व को न सिर्फ़ ख़त्म कर दिया बल्कि वे यहां की मुश्रिक व बुतपरस्त क़ौमें में पूरी तरह घुल मिल गये और अपने सामुदायिक पहचान और धार्मिक श्रेष्ठता को ही भुला दिया। मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम में ज़ाहिरी तौर पर कोई फ़र्क़ बाक़ी न बचा। ज़िन्दगी के सभी हिस्सों से इस्लाम की रूह समाप्त होती चली गयी। जिसका नतीजा यह निकला कि एकेश्वरवादियों और बहुदेववादियों के बीच व्यवहारिक व सामाजिक सारे अन्तर समाप्त हो गये। अन्त में मुसलमान इतने कमज़ोर हो गये कि उनकी हैसियत सियासी मोहरों से ज़्यादा न बची। जिन्हें सियासी जमाअतों ने अपने–अपने फ़ायदे के लिये भरपूर इस्तेमाल किया।

मौजूदा सूरतेहाल में खुशी की बात यह है कि देश का एक बहुत बड़ा वर्ग अब भी सेक्यूलर बुनियादो पर यक़ीन रखता है। वह मुल्क की तरक़्क़ी व उन्नति और उसकी गंगा–जमुनी तहज़ीब की रक्षा के लिये फ़िक्रमन्द भी है। ऐसे हालात में मुसलमानों की बुनियादी ज़िम्मेदारी है कि वे अपने महत्व का साबित करें। इस्लाम की हक़्क़ानियत, और उसकी श्रेष्ठ शिक्षाओं से दूसरों को परिचित कराएं। आपसी मेलजोल तिजारत व मामलात, सफ़र व हजर, विभिन्न समारोहों व घटनाओं बल्कि ज़िन्दगी के हर हिस्सें में ऐसा अमली नमूना पेश करें कि नफ़रत की दीवारें खुद ब खुद ढा जायें और मज़हब के नाम पर जो खाई बनायी जा रही है वह ख़त्म हो जाये और उसके लिये किसी भी आंदोलन, जमाअत या संगठन से जुड़ने की कोई शर्त नहीं। हर व्यक्ति अपनी–अपनी सतह पर इसको आरम्भ करे, वह खुद को एक नफ़ाबख़्श और फ़ायदे मन्द मुसलमान साबित करे फिर वह खुद ही उसके बेहतरीन परिणामों का अनुभव करेगा। यही तरीक़ा है इस मुल्क में मुसलमानों के मिल्ली पहचान और मज़हबी इम्तियाजात् के साथ बाक़ी रहने का। इसके अलावा अगर कोई ऐसा तरीक़ा अख़्तियार किया जिसकी बुनियाद जज़्बातियत पर या सियासी दावों पर होगी तो शायद हालात की तब्दीली और ज़्यादा क़ुर्बानियों का मुतालबा करे।

सलाम करना

जब तुम घरों में जाने लगो तो अपने लोगों पर सलाम करो। यह ख़ैर की दुआ अल्लाह की तरफ़ से बरकत वाली और उम्दह है।

सलाम के माने अमन व सलामती के हैं। यह एक दुआ है। जो एक मुसलमान दूसरे मुसलमान को देता है। कुरआन व हदीस में इस दुआ की ताकीद आयी है और इसके ख़ास अल्फ़ाज़ बताये गये हैं और वे अल्फ़ाज़ हैं:

''अस्सलाम अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहु'' यानि तुम पर सलामती हो और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकत हो। सिर्फ़ ''अस्सलाम अलैकुम'' कहना भी काफ़ी है। मगर पूरे अल्फ़ाज़ का कहना ज़्यादा फ़ज़ीलत और सवाब की बात है। ज़बान पर इन अल्फ़ाज़ का बार–बार आना बड़ी ख़ूबी की बात है। एक मुसलमान दूसरे मुसलमान को ख़िताब करने से पहले यह अल्फ़ाज़ कहता है। वह मिलते ही पहले मानो दुआ देता है, फिर दुआ करता है। इस दुआ में पहचानने और न पहचानने का कोई फ़र्क़ नहीं है। हर एक को सलाम करना चाहिये। अज़ीज़ हो, ग़ैर हो, जान–पहचान वाला हो, अजनबी हो, सलाम करना इस्लाम की पहचान है। इससे मुहब्बत बढ़ती है। अजनबियत दूर होती है। ताल्लुक़ पैदा होता है और दिलों में जो दूरी पैदा हो जाती है वह दूर हो जाती है।

अल्लाह तआला ने और उसके पाक रसूलुल्लाह (स०अ०) ने सलाम के फ़ज़ाएल, उसके आदाब, उसका तरीक़ा सबकुछ बतलाया है।

सलाम के अल्फ़ाज़

सलाम के अल्फ़ाज़ जैसा कि ऊपर ज़िक्र किये गये हैं, सिर्फ़ ''अस्सलाम अलैकुम'' भी हैं और उस पर ''रहमतुल्लाहि व बरकातुहु'' का इज़ाफ़ा भी। दोनों का अख़्तियार है। सिर्फ़ सवाब की कमी और ज़्यादती हो जाती है। सलाम की इब्तिदा हज़रत आदम अलैहिस्सलाम के वुजूद में आने से हुई।

हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी करीम (स०अ०) ने फ़रमाया अल्लाह तआला ने जब हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) को पैदा किया तो फ़रिश्तों की एक जमाअत, एक जमाअत की तरफ़ इशारा करके फ़रमाया: जाओ उन लोगों को सलाम करो और वे जो तुमको दुआएं दें वह ग़ौर से सुनना कि यही दुआ तुम्हारी और तुम्हारी औलाद के लिये होगी। हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) तशरीफ़ ले गये और कहा अस्सलाम अलैकुम, फ़रिश्तों ने जवाब दिया: अस्सलाम अलैकुम व रहमतुल्लाहि। तो उन्होंने रहमतुल्लाहि का इज़ाफ़ा किया।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

मौलाना मुहम्मद सानी हसनी रह०

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Postal Reg. No.
RBL/NP -19

Issue: 01 JANUARY 2018 VOLUME: 10

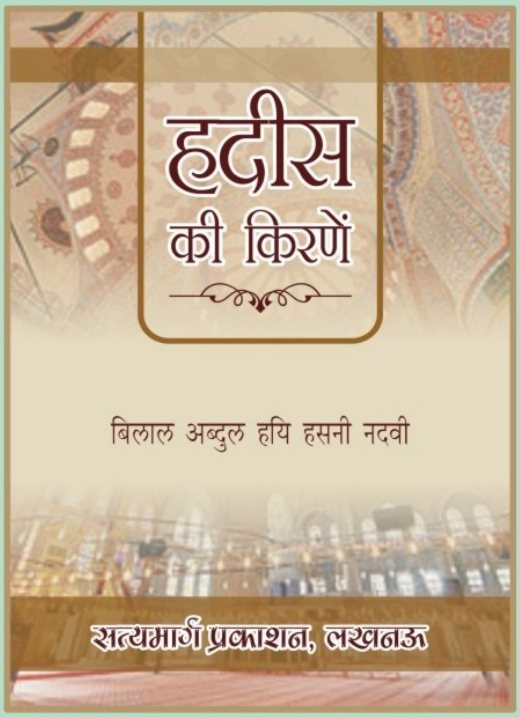

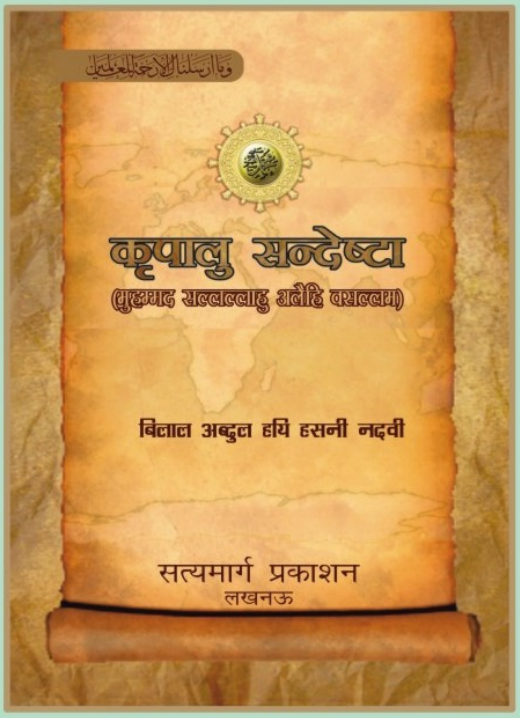

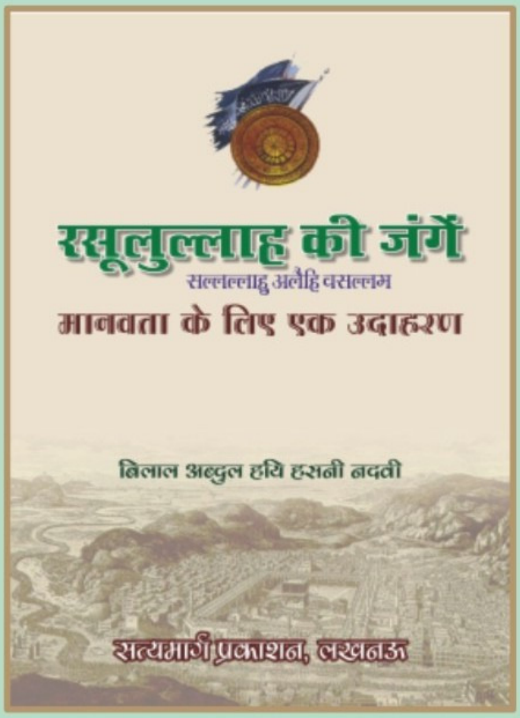

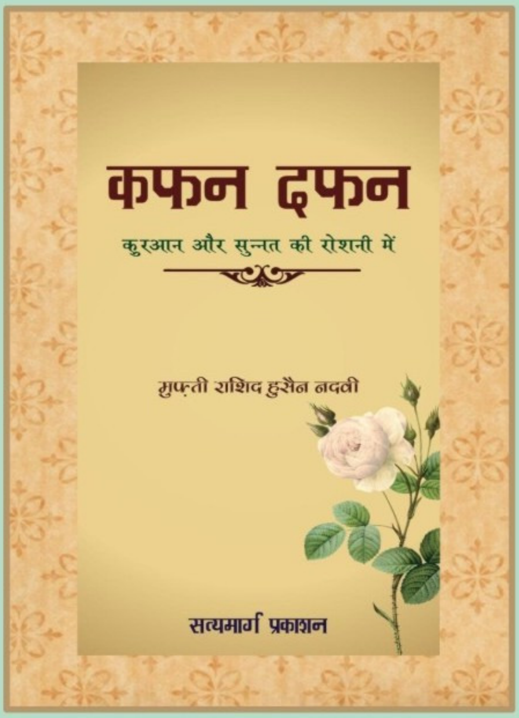

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI

Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.